भूत
का
भविष्य

(उपन्यास)

भूत का भविष्य

इलाचन्द्र जोशी



नेशनल पब्लिशिंग हाउस
(स्वत्वाधिकारी : के० एल० मलिक ऐंड संस प्रा० लि०)
२३, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२
शाखाएं
चौड़ा रास्ता, जयपुर
३४, नेताजी सुभाष मार्ग, इलाहाबाद-३

मूल्य : १८.००
स्वत्वाधिकारी : के० एल० मलिक ऐंड संस प्राइवेट लिमिटेड के लिए नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली-११०००२ द्वारा प्रकाशित/द्वितीय संस्करण : १९७९/सर्वाधिकार : इलाचन्द्र जोशी / रेखा बुक प्रो०, सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस, मौजपुर, दिल्ली-११००५३ में मुद्रित।

BHOOT KA BHAVISHYA (Novel) by Ilachandra Joshi

भूत का भविष्य





किसी तरह राकेश उस दिन भी नन्दा के साथ सुबह आठ बजे के करीब मकान की खोज में निकल पड़ा। उसका मन कह रहा था कि कहीं-न-कहीं मकान अवश्य मिल जायेगा। गरमी पूरी जोरों पर थी। उन्हें इलाहाबाद आये एक महीने के करीब हो गया था और प्रतिदिन चार-चार चक्कर लगाने पर भी कहीं कोई मकान नहीं मिल रहा था। कल शाम उसके एक परिचित सज्जन ने आश्वासन देते हुए बताया था कि सिविल लाइन्स के पास ही एक गली में एक काफी बड़ा मकान सस्ते किराये पर मिल रहा है। जो पता उन्होंने बताया था उस पर बड़े गौर से ध्यान देते हुए दोनों उसी गली पर पहुँच गये। गली का नाम ठीक ही था और जो दूसरी पहचानें उक्त सज्जन ने बतायी थीं, वे भी ठीक ही उतरीं। वे लोग बिना अधिक परेशानी के सही मकान के दरवाजे पर ही उतरे। भीतर फाटक के पास ही एक सज्जन सफेद कुरता और सफेद ही पायजामा पहने आंगन में चहलकदमी कर रहे थे। राकेश ने उनके सामने बिलकुल पास ही खड़े होकर नमस्कार किया और पूछा कि क्या यह मकान

सचमुच खाली है। मकान के ऊपर 'टु-लेट' की तख्ती लगी देखकर भी उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि वह मकान खाली होगा।

सज्जन ने इस दृष्टि से राकेश की ओर देखा जैसे वह काठ का उल्लू हो। उन्होंने हाथ खड़ा करके बिना लौटे ही अपनी तर्जनी मकान के ऊपर लटकी तख्ती की ओर उठायी। राकेश ने तनिक झेंपते हुए पूछा, "किराया क्या होगा?"

"अभी दो-चार दिन के लिए आपसे कोई किराया नहीं लिया जायेगा। उसके बाद यदि मकान आपको हर दृष्टि से पसन्द आ गया तो फिर किराये की बात चलायी जायेगी।"

"फिर भी अन्दाजन कितना किराया आप चाहेंगे?"

"वैसे तो इसका किराया डेढ़-दो सौ तक वसूला जा चुका है, पर आप से पचास-साठ से अधिक नहीं लिया जायेगा।"

अत्यन्त प्रसन्न होकर राकेश झट से बोल उठा, "तो हम ले आवें अपना सामान अभी?"

"हां, शौक से लाइए और दिन-ही-दिन में सेटल हो जाइए। मैं आप लोगों का यहीं इन्तजार करूंगा और आपको मकान की ताली भी देता जाऊंगा।"

ताली मांगकर प्रधान दरवाजा खुलवाकर राकेश और नन्दा ने भीतर प्रवेश किया और एक-एक कमरे को बड़े गौर से देखा। कई बाथरूम देखे जिनके टोंटी-खुले नलों से पानी झरनों की तरह बह रहा था। सभी कमरे साफ-सुथरे बने हुए थे। नीचे से दोनों ने सुना कि कमरे से कोई आदमी टिन पर किसी लकड़ी के टुकड़े से किसी लोकगीत की-सी धुन बजा रहा था, जो कुछ अजीब-सी लग रही थी। मकान दिखानेवाले सज्जन से पूछने पर उन्होंने उपेक्षा से कहा—"होगा कोई मजदूर!"

राकेश का रिक्शा खड़ा था। वह नन्दा के साथ फाटक के बाहर निकला और दोनों रिक्शे पर बैठ गये। बैठने पर दोनों ने पीछे की ओर लौटकर एक नजर फिर मकान की ओर फेरी। ताजा पुताई से मकान जैसे जगमगा रहा था, पर लकड़ी और ईंटें, काफी घिसी हुई लगीं। राकेश ने गौर से देखने पर ठीक ही अन्दाज लगाया था कि मकान काफी

पुराना पड़ गया है और ताजी पुताई भी उसकी खामियों को छिपा रखने में समर्थ नहीं है। मकान के सबसे नीचेवाले खण्ड के चौड़े बरामदे का बीच का खम्भा काफी टेढ़ा हो चुका है जैसे किसी बूढ़े की रीढ़ ही उम्र के साथ-साथ धनुषाकार बन चुकी हो। फिर भी कुल मिलाकर मकान तनिक भी बुरा नहीं है। और फिर इतने बड़े मकान का किराया इतना सस्ता! बड़े भाग से ही ऐसा संयोग आता है।

पर रह-रहकर उसके भीतर भी एक निराली ही शंका की लहर पेट के भीतर उठनेवाले एक मीठे-मीठे दर्द की तरह उठ रही थी, जो एक सेकेन्ड के लिए भी उसे चैन नहीं लेने दे रही थी। वह सोच रहा था कि इतने बड़े मकान का इतना कम किराया मकानवाले ने या उसके एजेण्ट ने —वह चाहे कोई भी रहा हो, क्यों मांगा? कहता था कि वह मकान पहले दो-ढाई सौ रुपये तक पर उठ चुका है, तब उस पर उसकी यह विशेष कृपा क्यों? किसी भी मकान-मालिक से ऐसी दया की आशा आज के युग में, जबकि चारों ओर मकानों का निपट अभाव है, नहीं की जा सकती। निश्चय ही इसमें कोई-न-कोई रहस्य है। और उसे छत पर से टिन पर बजनेवाली धुन की याद आयी, जो एक साधारण धुन नहीं थी। और उसकी याद आते ही उसके भीतर से एक निराली ही लहर लहर उठी। नन्दा के आगे वह अपनी शंका प्रकट नहीं करना चाहता था। जब रिक्शा उन दोनों के निवास-स्थान पर पहुंचा तब उसका मूड एकदम बिगड़ चुका था। वह निवास-स्थान भी विचित्र था। एक बहुत पुराने मकान में कमरों की दो लम्बी कतारें—एक ऊपर और एक नीचे—बनी हुई थीं। पता चला कि प्रत्येक कमरे का किराया दस रुपये महीने लिया जाता था। मकान यद्यपि जाहिरा तौर पर बहुत पुराना था, तथापि स्पष्ट ही यह निश्चित लगता था कि कमरे हाल ही में योजनानुसार तैयार किये गये थे। निवास-गृहों के निपट अभाव को देखकर उस पुरानी जाय-दाद से अधिकाधिक लाभ उठाने की तरकीब सोची गयी होगी। नरेन्द्र को मकान की यह योजना बड़ी ही मनहूस लगती थी। कमरे सब भरे हुए थे, वह कोई होटल भी नहीं था, क्योंकि किरायेदारों के लिए भोजन और चाय की कोई भी व्यवस्था वहां नहीं थी। नरेन्द्र ने दो कमरे किराये पर

लिये थे, जिनमें से एक में तो वे दोनों रहते थे और दूसरे को रसोईघर के रूप में काम में लाते थे। किरायेदारों में एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं था जिसके साथ दो घड़ी बातचीत करके जी बहलाया जा सकता हो। कुछ तो फुटपाथ पर सामान फैलाकर बेचनेवाले व्यापारी थे, कुछ मजदूर थे, कुछ अतिस्वल्प वेतनवाले बाबू, दो-चार रिक्शावाले और कुछ मिस्त्री भी नीचे के कमरे में रहते थे। सारा वातावरण सब समय कुछ अजीब-सी घुटन-वाले अदृश्य कुहरे और उबकाई पैदा करनेवाली एक अजीब-सी महक से आच्छन्न रहता था। राकेश तो दो ही दिन में उस घुटन से अभ्यस्त हो चुका था, पर नन्दा अपने को सातवें नरक में गिरी हुई-सी महसूस कर रही थी।



इस अनुभव के पीछे एक विशेष कारण भी था। वे दोनों भागकर मथुरा से इलाहाबाद आये थे। नन्दा से राकेश का परिचय घनिष्ट-से-घनिष्टतर रूप पकड़ता चला जा रहा था। नन्दा ब्रजवासिनी थी। वृन्दावन के पास एक गांव में उसका जन्म हुआ था। बचपन से ही उसकी रुचि पठन-पाठन की ओर थी। अपने जन्मजात संस्कार को बढ़ावा देने की सुविधा भी उसे मिलती चली गयी। वह एक संस्कृत-अध्यापक की लड़की थी और फलतः उसकी शिक्षा-दीक्षा भी रूढ़िवादी और पण्डिताई संस्कारों के अनुसार हुई थी, और पारम्परिक संस्कार कट्टर ब्रजवासी वैष्णव परिवारों से मेल खाते थे। संस्कृत की शिक्षा उसने बचपन ही से

पायी थी और सूरदास, नन्ददास, मीराबाई आदि भक्त कवियों की रचनाएं उसे प्रारम्भ ही से पढ़ने को मिली थीं। एक ब्रजवासी बंगाली सज्जन की सहायता से चण्डीदास, विद्यापति, गोविन्ददास आदि कवियों की रचनाएं भी उसने थोड़ी-बहुत पढ़ी थीं। इस प्रकार की रचनाएं पढ़ते-पढ़ते उसके स्वभाव में रीतिकालीन सभ्यता और संस्कृति पूर्णतः प्रविष्ट हो चुकी थी। और वह सब समय ब्रज की अस्तित्वहीन, काल्पनिक कुंज-गलियों में ही विचरण करती रहती और उसका रस-स्निग्ध मन जाग्रत और स्वप्न दोनों अवस्थाओं में, उन्हीं में रमता रहता। निरन्तर उसी दुनिया में मग्न रहने से उनके मुख की बनावट और बिनावट और बड़ी-बड़ी आंखों की शान्त छाया में एक स्वप्निल सान्द्रता, स्निग्ध और सरस आर्द्रता और मध्ययुगीन मोहक भावमग्नता की गहरी और गाढ़ी अभिव्यंजना पायी जाती। उस अजनबी-सी अभिव्यक्ति की बाहरी झलक देखकर स्वयं उसके पिताश्री गोपीवल्लभ शर्मा भी कुछ सहम-से गये थे। उन्हें लगा कि लड़की जीवन में बड़ी आसानी से भटक सकती है, इसलिए उन्होंने उसे गम्भीर विषयों की पुस्तकों के अध्ययन के लिए प्रेरित करने में कोई कसर न उठा रखी। उनका परिवार काफी बड़ा था। नन्दा उनकी सबसे बड़ी लड़की थी। उससे छोटे चार-पांच बच्चे और थे। शर्मा जी की सांसारिक दृष्टि केवल इतना ही चाहती थी कि लड़की किसी विद्यालय में अध्यापिका बनकर गम्भीर जीवन व्यतीत करे और थोथी भावुकता के चक्करों में न उतरकर उनके परिवार की कुछ आर्थिक सहायता नियमित रूप से करती रहे। इसी लक्ष्य को सामने रखकर उन्होंने उसे बी०ए०, बी०टी० तक की शिक्षा मथुरा में दिलायी थी। अब केवल एल० टी० करना शेष रह गया था, पर भाग्य के कुचक्र में कमन्द तब टूटी जब मंजिल लबे-बाम रह गयी थी।

इस दुर्भाग्य का चक्र उस रात से शुरू हुआ जब राकेश उनके कॉलेज के एक कवि सम्मेलन में कविता सुनाने आया हुआ था। संयोजकों ने सबसे ऊपर राकेश का ही नाम रखा हुआ था। शायद इस आधार पर कि

उसका गला बहुत अच्छा था और वह स्वर-सहित अत्यन्त सरस कविताएं सुनाने के लिए उस अंचल में ख्याति प्राप्त कर चुका था। वह देखने में भी सुन्दर था।

जब नियमित समय पर आमन्त्रित श्रोताओं के पारस्परिक वार्तालाप का कलगुंजन शान्त हो गया और हाल के उत्सुक वातावरण में एकान्त शान्ति छा गयी तब राकेश का नाम पुकारा गया। राकेश का पूरा नाम ब्रजमोहन राकेश था। जब वह नेपथ्य की बगल से अपने स्थान से उठकर मंच के बीच में खड़ा हुआ तब नन्दा को वह साक्षात् ब्रजमोहन कृष्ण-सा लग रहा था और जब उसने बांसुरी की-सी ही मीठी, पतली और प्यारी आवाज में कविता सुनना आरम्भ किया, तब तो नन्दा को लगा, जैसे साक्षात् वंसीविहारी ने ही राधा को बाहर निकलने की प्रेरणा देने के लिए ही वह अलौकिक तान छेड़ी है। उसका रोआं-रोआं अपूर्व पुलक की तरंग से पसीज-पसीज उठा। राकेश को अपनी कविता सस्वर पढ़ते हुए वह इसके पहले भी अपने कॉलेज में और दूसरे कॉलेजों में सुन चुकी थी। पर तब उसकी उम्र कच्ची थी और वह काव्य-रस के माधुर्य से अनभिज्ञ थी। पर आज उसे सब-कुछ नया लग रहा था।

उस दिन शाम को वह अपनी अम्मा से एक साधारण-सी गार्हस्थिक बात पर झगड़कर कवि-सम्मेलन में आयी थी और एक तीखी अशान्ति से उसके मन का कन-कन अस्थिर हो उठा था। उसे जीवन में और जगत् में सब-कुछ बाधक, अवरोधक, अशान्तिकर, असन्तोषजनक और पीड़ादायक लग रहा था। सारा जीवन व्यर्थ, विसंगत और अपार दुःख-सागर से घिरा हुआ लग रहा था। इसलिए जब पहली ही कविता उसने सुनी तब लगा, दुखों के कष्टमय महासागर से घिरे हुए एकान्त नीरस जीवन की सारी विकराल दुर्गमता पल में पूर्णतः सुगम बन गयी है और भयजाल के सारे अवरोधक परदे पलक मारते ही एकदम छिन्न-भिन्न हो गये हैं और जादू का एक पूर्णतः सुगम अनचीन्हा और इतने वर्षों से ओझल देश किसी मायावी की फूंक से नेपथ्य के आर-पार झांकने लगा है। उस निराली दुनिया की रंगीनियों में वह इस कदर खो गयी थी कि इस बात की चेतना ही उसे न रही कि राकेश कब अपना गीत समाप्त करके

मंच से चला गया और कब से उसके स्थान पर एक दूसरा कवि अपनी नीरस कविता अपनी कर्कश वाणी में सुना रहा था। वह फिर नीरस यथार्थ की दुनिया में अपना सिर पटकने को बाध्य हो गयी। इच्छा हुई कि तत्काल उठकर बाहर के एकान्त सन्नाटे के अंधकार में चली जाये और अपने खोये हुए सपने में डूब जाये। वह एक बार सचमुच उठने लगी थी, पर उसकी बगल में बैठी सहेली ने उसका हाथ पकड़कर झटके से उसे फिर नीचे बिठा दिया। शेष कवियों की रचनाएं वह अर्द्धचेतनावस्था में बरबस सुनती रही। अन्त में जब कवि-सम्मेलन की समाप्ति की घोषणा हुई और श्रोतागण हॉल से एक-एक करके बाहर निकल गये, नन्दा तब भी नहीं उठी। ऑटोग्राफ के आकांक्षी युवक और युवतियों के साथ वह हॉल में खड़ी थी। नन्दा की सहेली ने प्रस्ताव पास किया कि चलो हम भी दो-एक कवियों के ऑटोग्राफ क्यों न लें। अलबम तो तुम साथ में लायी ही होगी ? मैं तो लायी हूँ। चलो उठो। और जड़-सी बनी हुई नन्दा को उसने बरबस ऊपर उठाया और दोनों सीधे मंच की ओर बढ़ीं।

नन्दा ने तनिक झिझक के साथ अपनी कॉपी सीधे राकेश की ओर बढ़ा दी। राकेश ने एक बार गौर से उसकी ओर देखकर लपकते हुए कॉपी अपने हाथ में ली और नन्दा की ही कलम उसके हाथ से हल्के झटके के साथ छीनकर ठाठ से कॉपी के एक खाली और रंगीन पन्ने पर लिख दिया : "प्रेम ही सच्ची मुक्ति है। इस अनुभव को छोड़कर सबकुछ भ्रम और भटकाव है।—राकेश"

कॉपी वापस मिलने पर नन्दा ने मंच के उज्ज्वल प्रकाश में वहीं खड़े-खड़े कवि का लिखित सन्देश पढ़ा। पढ़ते ही उसके चेहरे पर लाली दौड़ गयी और भागती हुई-सी वह पीछे की ओर लौट पड़ी।

तब से फिर कई बार छोटे और बड़े कवि-सम्मेलनों में राकेश से नन्दा का मिलन होता रहा और दोनों के बीच घनिष्टता बढ़ती गयी। इस घनिष्टता के फलस्वरूप नन्दा को ऐसा लगता रहा कि उसके चारों ओर के संकीर्ण वातावरण की दुर्लंघ्य और अटूट चहारदीवारी बीच में कहीं से धीरे-धीरे टूटती चली जा रही है और उसके बाहर के आकाश की अपूर्व

झाँकी उसकी आँखों के आगे से काला परदा हटाकर एक अपूर्व मोहक छवि उसकी धुंधग्रस्त आँखों के आगे झलकाती जा रही है। और एक ताजे और सुखद अनुभव का सर्वशुद्ध कर-स्पर्श उसके शरीर में और प्राणों में एक कल्पनातीत चैतन्य लाता चला जा रहा है। वह जैसे एक सूक्ष्मतम वायु की हल्की-हल्की तरंगों में अपने नये उगे हुए पंखों के सहारे मुक्त रूप से उड़ान भरने की पूरी छूट पा गयी है। उसके अन्तर का जो भारीपन उसे इतने दिनों तक निरन्तर नीचे-नीचे, और अधिक नीचे के किसी घन-घोर और भयावह नरक की ओर ढकेले हुए लिये जा रहा था वह दिन-पर-दिन एक रेशमी रंगीली में परिणत होकर पूरे वेग से सहज ही, बिना किसी प्रयास के, ऊपर की मुक्त वायु में पंख फड़फड़ाने के लिए जैसे बरबस प्रेरित करने लगा है। अपनी इस स्थिति को समझने में उसे काफी समय लगा। जब उसे यह लगा कि अपनी उस नयी स्थिति का कुछ सही रस मिलने लगा है तब राकेश ने एक दूसरी ही दिशा की ओर उसे एक झटका दिया। एक दिन एकान्त में उससे मिलने का अवकाश प्राप्त होने पर राकेश ने उससे कहा : "इस ब्रजभूमि का मोह त्यागे बिना तुम्हारा उद्धार असम्भव है। यह मोह तुम्हारी आत्मा की गहराइयों में जड़ें जमा चुका है। तुम्हें अब पूरी लगन से एक-एक करके उन जड़ों को उखाड़ते चले जाने के प्रयत्नों में जुट जाना होगा, तभी तुम्हारी मुक्ति सम्भव है, और मेरी भी। वरना इस ब्रजभूमि में लम्बी ऐतिहासिक परम्परा के बाद जो मोहक रस अभी तक शेष है, वह तुम्हारी आत्मा को धीरे-धीरे अनजाने ही पूरा-का-पूरा चाट जायेगा—मैं पूरी गम्भीरता से यह बात तुमसे कह रहा हूँ। इसलिए सावधान हो जाओ!"

सुनकर नन्दा एक गहरे धक्के से जैसे उचक उठी। कुछ समय तक स्तब्ध भाव से राकेश की ओर गौर से देखती रही। जब संभली तब हांफती हुई-सी बोली, "यह क्या कह रहे हैं आप राकेशजी! पिछले कितने ही युगों से अपने ही भीतर के पाशों की जकड़ से घुटते हुए अनेक मानव-प्राणी अपने बन्धनों से मुक्ति के लिए दूर-दूर से इस ब्रजभूमि में आकर बसने के लिए छटपटाते रहे और यहाँ मृत्यु-पर्यन्त जमकर बस भी गये और यहाँ मुक्ति का संस्कार लेकर अपने को धन्य समझते रहे और आप

उल्टी दिशा दिखाकर मेरा मोह भंग करना चाहते हैं। आप कवि हैं, और इस ज्वलन्त तथ्य से आपका परिचय अवश्य होगा कि अनेक कवियों ने यहीं आकर सही और अन्तिम लक्ष्य की सुन्दर झाँकी पायी है। तब आप मेरे सम्वन्ध में उल्टी दिशा के पथ-प्रदर्शक क्यों वनना चाहते हैं?"

राकेश ने अत्यन्त दुःखित होकर एक लम्वी आह-सी भरते हुए कहा, "मुझे इस जानकारी से वहुत दुःख हुआ है कि, अभी तक प्रत्यक्ष देखने पर भी काल-चक्र की सव-कुछ उलट देनेवाली गति का तुम्हें तनिक भी परिचय प्राप्त नहीं हो पाया है। अपनी घड़ी की सुई को काल-चक्र की मूल घड़ी की सुई से ठीक मिला लो नन्दा, तुम्हारा भ्रामक काल-ज्ञान तुम्हें एक दिन जाने कहाँ लाकर पटक देगा। फिर वाद में पछताने का भी समय न मिल पायेगा।"

नन्दा चकित और स्तव्ध थी। और उसे लग रहा था, जैसे उसकी भ्रान्ति दूर होने के वजाय और अधिक वढ़ती चली जा रही है।

इस वार्तालाप के कुछ दिन वाद राकेश ने नन्दा के आगे अपनी योजना सुस्पष्ट रूप में रखी। उसने कहा, "हम लोग इस पवित्र व्रजभूमि को त्यागकर प्रयाग की लीला-भूमि में चलें। वहाँ हम एक ऐसी वुद्धि-विलास-भूमि में जा पहुँचेंगे जहाँ हम अपने जीवन के लक्ष्य की ओर एक ही वार में कई कदम आगे वढ़ने की सुविधा पा जायेंगे।

इसके वाद प्रयाग की प्रशंसा में उसने ऐसी-ऐसी ऊँची वातें अत्यन्त गम्भीर भाव से नन्दा को वतायीं, ऐसे-ऐसे सब्जवाग नन्दा को दिखाये कि दो ही घण्टे की वातचीत से व्रजभूमि के वाहर एक भी पग रखने को अनिच्छुक नन्दा करीव-करीव तैयार हो गयी—राकेश के साथ भाग निकलने को! पर इलाहावाद पहुँचते ही पहाड़ की चोटियों से भी विकट वाधाएँ दोनों के आगे खड़ी हो गयीं। कहीं तिल-भर जमीन भी जमकर पैर रखने को नहीं मिल पायी। राकेश ने इलाहावाद का चप्पा-चप्पा छान डाला, पर कहीं कोई साधारण रूप से काम-चलाऊ आवास भी उन्हें प्राप्त न हो सका। राकेश इलाहावाद से पूर्व-परिचित था। उसने प्रयाग विश्वविद्यालय में ही शिक्षा पायी थी, फिर भी आज जैसे इलाहावाद से उसका नया परिचय हो रहा था। उसने काल-चक्र की

झाँकी उसकी आँखों के आगे से काला परदा हटाकर एक अपूर्व मोहक छवि उसकी धुंधग्रस्त आँखों के आगे झलकाती जा रही है। और एक ताजे और सुखद अनुभव का सर्वशुद्ध कर-स्पर्श उसके शरीर में और प्राणों में एक कल्पनातीत चैतन्य लाता चला जा रहा है। वह जैसे एक सूक्ष्मतम वायु की हल्की-हल्की तरंगों में अपने नये उगे हुए पंखों के सहारे मुक्त रूप से उड़ान भरने की पूरी छूट पा गयी है। उसके अन्तर का जो भारीपन उसे इतने दिनों तक निरन्तर नीचे-नीचे, और अधिक नीचे के किसी घन-घोर और भयावह नरक की ओर ढकेले हुए लिये जा रहा था वह दिन-पर-दिन एक रेशमी रंगीली में परिणत होकर पूरे वेग से सहज ही, बिना किसी प्रयास के, ऊपर की मुक्त वायु में पंख फड़फड़ाने के लिए जैसे बरबस प्रेरित करने लगा है। अपनी इस स्थिति को समझने में उसे काफी समय लगा। जब उसे यह लगा कि अपनी उस नयी स्थिति का कुछ सही रस मिलने लगा है तब राकेश ने एक दूसरी ही दिशा की ओर उसे एक झटका दिया। एक दिन एकान्त में उससे मिलने का अवकाश प्राप्त होने पर राकेश ने उससे कहा : "इस व्रजभूमि का मोह त्यागे बिना तुम्हारा उद्धार असम्भव है। यह मोह तुम्हारी आत्मा की गहराइयों में जड़ें जमा चुका है। तुम्हें अब पूरी लगन से एक-एक करके उन जड़ों को उखाड़ते चले जाने के प्रयत्नों में जुट जाना होगा, तभी तुम्हारी मुक्ति सम्भव है, और मेरी भी। वरना इस व्रजभूमि में लम्बी ऐतिहासिक परम्परा के बाद जो मोहक रस अभी तक शेष है, वह तुम्हारी आत्मा को धीरे-धीरे अनजाने ही पूरा-का-पूरा चाट जायेगा—मैं पूरी गम्भीरता से यह बात तुमसे कह रहा हूँ। इसलिए सावधान हो जाओ!"

सुनकर नन्दा एक गहरे धक्के से जैसे उचक उठी। कुछ समय तक स्तब्ध भाव से राकेश की ओर गौर से देखती रही। जब संभली तब हांफती हुई-सी बोली, "यह क्या कह रहे हैं आप राकेशजी! पिछले कितने ही युगों से अपने ही भीतर के पाशों की जकड़ से घुटते हुए अनेक मानव-प्राणी अपने बन्धनों से मुक्ति के लिए दूर-दूर से इस व्रजभूमि में आकर बसने के लिए छटपटाते रहे और यहाँ मृत्यु-पर्यन्त जमकर बस भी गये और यहाँ मुक्ति का संस्कार लेकर अपने को धन्य समझते रहे और आप

उल्टी दिशा दिखाकर मेरा मोह भंग करना चाहते हैं। आप कवि हैं, और इस ज्वलन्त तथ्य से आपका परिचय अवश्य होगा कि अनेक कवियों ने यहीं आकर सही और अन्तिम लक्ष्य की सुन्दर झाँकी पायी है। तव आप मेरे सम्वन्ध में उल्टी दिशा के पथ-प्रदर्शक क्यों वनना चाहते हैं ?"

राकेश ने अत्यन्त दुःखित होकर एक लम्वी आह-सी भरते हुए कहा, "मुझे इस जानकारी से वहुत दुःख हुआ है कि, अभी तक प्रत्यक्ष देखने पर भी काल-चक्र की सव-कुछ उलट देनेवाली गति का तुम्हें तनिक भी परिचय प्राप्त नहीं हो पाया है। अपनी घड़ी की सुई को काल-चक्र की मूल घड़ी की सुई से ठीक मिला लो नन्दा, तुम्हारा भ्रामक काल-ज्ञान तुम्हें एक दिन जाने कहाँ लाकर पटक देगा। फिर वाद में पछताने का भी समय न मिल पायेगा।"

नन्दा चकित और स्तव्ध थी। और उसे लग रहा था, जैसे उसकी भ्रान्ति दूर होने के वजाय और अधिक वढ़ती चली जा रही है।

इस वार्तालाप के कुछ दिन वाद राकेश ने नन्दा के आगे अपनी योजना सुस्पष्ट रूप में रखी। उसने कहा, "हम लोग इस पवित्र व्रजभूमि को त्यागकर प्रयाग की लीला-भूमि में चलें। वहाँ हम एक ऐसी वुद्धि-विलास-भूमि में जा पहुँचेंगे जहाँ हम अपने जीवन के लक्ष्य की ओर एक ही वार में कई कदम आगे वढ़ने की सुविधा पा जायेंगे।

इसके वाद प्रयाग की प्रशंसा में उसने ऐसी-ऐसी ऊँची वातें अत्यन्त गम्भीर भाव से नन्दा को वतायीं, ऐसे-ऐसे सब्जवाग नन्दा को दिखाये कि दो ही घण्टे की वातचीत से व्रजभूमि के वाहर एक भी पग रखने को अनिच्छुक नन्दा करीव-करीव तैयार हो गयी—राकेश के साथ भाग निकलने को! पर इलाहावाद पहुँचते ही पहाड़ की चोटियों से भी विकट वाधाएँ दोनों के आगे खड़ी हो गयीं। कहीं तिल-भर जमीन भी जमकर पैर रखने को नहीं मिल पायी। राकेश ने इलाहावाद का चप्पा-चप्पा छान डाला, पर कहीं कोई साधारण रूप से काम-चलाऊ आवास भी उन्हें प्राप्त न हो सका। राकेश इलाहावाद से पूर्व-परिचित था। उसने प्रयाग विश्वविद्यालय में ही शिक्षा पायी थी, फिर भी आज जैसे इलाहावाद से उसका नया परिचय हो रहा था। उसने काल-चक्र की

मूल घड़ी से सुई मिलाने का प्रण कर लिया। दोनों दूसरी सभी कठिनाइयों का सामना साहस से करने को पूरी तरह से तैयार होकर आये थे। यदि किसी एकान्त स्थान में चार फीट चौड़ी और उतनी ही लम्बी कोठो भी उन्हें मिल जाती तो एकान्त में अपनी नयी परिस्थिति पर शान्ति से विचार करने का तनिक अवकाश तो दोनों पा ही जाते। पर इलाहाबाद से पूर्णतः परिचित होने के सम्बन्ध में राकेश का सारा गर्व प्रारम्भ ही में इस प्रकार बिखरकर चकनाचूर हो गया था कि वह नन्दा को सान्त्वना देने के लिए कोई ललित शब्द भी नहीं खोज पाता था। उसकी घिग्घी ही जैसे एकदम बँध गयी हो। चौबीस घण्टों में से तेईस घण्टे वह एकदम घर के भीतर घुसा रहता। यह नन्दा के ऊपर एक नयी मुसीबत टूट पड़ी। वास्तव में राकेश को इलाहाबाद के सम्बन्ध में केवल उतनी ही जानकारी थी जितनी कि विश्वविद्यालय के किसी नये छात्र को होनी चाहिए। इलाहाबाद में चार वर्ष विश्वविद्यालयीय जीवन बिताने पर भी वह न वहाँ के जीवन के सम्बन्ध में कोई विशेष जानकारी प्राप्त कर पाया था, न जगत् के बारे में। कवि-सम्मेलनों के श्रोताओं की वाहवाही पाकर ही वह तृप्त और मस्त था। और दुनिया के बाहर की कोई भी जानकारी की आवश्यकता उसने कभी महसूस नहीं की थी। नन्दा की घबराहट, बेचैनी और चिन्ता प्रतिपल बढ़ती ही चली जाती थी और सब समय वह प्राण-शोषी घुटन का अनुभव बड़े तीखे रूप में करती चली जाती थी। इस निपट अव्यावहारिक कवि के साथ वह जीवन के चार दिन भी कैसे काट पायेगी! सोच-सोचकर आतंक से अपना सिर और छाती पीटने को उसका जी चाहता और रहे-सहे भ्रम का परदाफाश होने पर उसकी ग्लानि की सीमा नहीं रह गयी थी। जो कमरा राकेश ने 'जन्ता' (जनता नहीं) होटल में लिया था, उसके सम्बन्ध में उसके (राकेश के) गर्व की सीमा नहीं थी। बार-बार वह नन्दा को इस बात की याद दिलाता रहता है कि उसके पराक्रम से ही कहीं विश्राम के लिए एक टुकड़ा कमरे का बड़ी मुश्किल से मिल पाया है।

आज जब एक बड़े-से मकान का पता लगा और स्थायी रूप से वहाँ जम जाने की बात तय हो गयी, तब तो राकेश अपने को सातवें आसमान

मूल घड़ी से सुई मिलाने का प्रण कर लिया। दोनों दूसरी सभी कठिनाइयों का सामना साहस से करने को पूरी तरह से तैयार होकर आये थे। यदि किसी एकान्त स्थान में चार फीट चौड़ी और उतनी ही लम्बी कोठी भी उन्हें मिल जाती तो एकान्त में अपनी नयी परिस्थिति पर शान्ति से विचार करने का तनिक अवकाश तो दोनों पा ही जाते। पर इलाहाबाद से पूर्णतः परिचित होने के सम्बन्ध में राकेश का सारा गर्व प्रारम्भ ही में इस प्रकार बिखरकर चकनाचूर हो गया था कि वह नन्दा को सान्त्वना देने के लिए कोई ललित शब्द भी नहीं खोज पाता था। उसकी घिग्घी ही जैसे एकदम बँध गयी हो। चौबीस घण्टों में से तेईस घण्टे वह एकदम घर के भीतर घुसा रहता। यह नन्दा के ऊपर एक नयी मुसीबत टूट पड़ी। वास्तव में राकेश को इलाहाबाद के सम्बन्ध में केवल उतनी ही जानकारी थी जितनी कि विश्वविद्यालय के किसी नये छात्र को होनी चाहिए। इलाहाबाद में चार वर्ष विश्वविद्यालयीय जीवन बिताने पर भी वह न वहाँ के जीवन के सम्बन्ध में कोई विशेष जानकारी प्राप्त कर पाया था, न जगत् के बारे में। कवि-सम्मेलनों के श्रोताओं की वाहवाही पाकर ही वह तृप्त और मस्त था। और दुनिया के बाहर की कोई भी जानकारी की आवश्यकता उसने कभी महसूस नहीं की थी। नन्दा की घबराहट, बेचैनी और चिन्ता प्रतिपल बढ़ती ही चली जाती थी और सब समय वह प्राण-शोषी घुटन का अनुभव बड़े तीखे रूप में करती चली जाती थी। इस निपट अव्यावहारिक कवि के साथ वह जीवन के चार दिन भी कैसे काट पायेगी! सोच-सोचकर आतंक से अपना सिर और छाती पीटने को उसका जी चाहता और रहे-सहे भ्रम का परदाफाश होने पर उसकी ग्लानि की सीमा नहीं रह गयी थी। जो कमरा राकेश ने 'जन्ता' (जनता नहीं) होटल में लिया था, उसके सम्बन्ध में उसके (राकेश के) गर्व की सीमा नहीं थी। बार-बार वह नन्दा को इस बात की याद दिलाता रहता है कि उसके पराक्रम से ही कहीं विश्राम के लिए एक टुकड़ा कमरे का बड़ी मुश्किल से मिल पाया है।

आज जब एक बड़े-से मकान का पता लगा और स्थायी रूप से वहाँ जम जाने की बात तय हो गयी, तब तो राकेश अपने को सातवें आसमान

पर पहुँचा हुआ महसूस करने लगा। पर नन्दा जिस समय उस मकान को देखकर लौटी थी, तब से उसकी अशान्ति और अज्ञात भय की सीमा नहीं थी। एक ढाबे में कुछ अधपके और रूखे पराठे और बासी सब्जी खाकर जब सामान को रिक्शाओं में लादकर दोनों सूनी बस्ती वाले उस नये मकान में बसने चल पड़े, तब नन्दा का हृदय भविष्य की किसी अमंगल आशंका से रह-रहकर धड़क रहा था।



मकान में पहुँचकर उत्तर को खुले हुए एक कमरे में दोनों मिलकर सामान संजोने लगे। ऊपर एक कमरे में दो अधटूटे खाट शायद किसी भूतपूर्व किरायेदार द्वारा परित्यक्त पड़े हुए थे, उन्ही पर दो बिस्तरे बिछाकर और दो-तीन खूँटियों पर कपड़े टाँगकर, कमरे को दो मजदूरों की सहायता से झाड़-बुहारकर जब वे थककर पस्त हो गये, तब एकदम अधमरे-से पांव पसारकर लम्बे हो गये।

नन्दा बड़ी देर तक सोती रही। वह तन और मन से भी बहुत थकी हुई थी। जब आंखें खुलीं तब भी उसका उठने को जी नहीं चाहता था। अनन्त काल तक लेटी रहे तो अच्छा है—उसने सोचा। पर राकेश जोर-जोर से चिल्लाता हुआ सामान को इधर-उधर रखता कमरे में धमाधम की आवाज कर रहा था। इसलिए नन्दा चैन से लेट भी नहीं पा रही थी। फिर भी लेटी ही रही। राकेश ने झिड़ककर कहा, "अब उठोगी भी

या यूं ही लेटे-लेटे रात कर दोगी। अभी सामान सब बिखरा पड़ा है। इसके अलावा रात में खाना भी खाना होगा। किचिन का भी तो कोई प्रवन्ध कर लेना है। आज भी यदि होटल में खाना पड़ा तो मैं निश्चय ही बीमार पड़ जाऊंगा, अपनी तुम जानो।"

'किचिन' की याद आते ही नन्दा हड़बड़ाती हुई उठ बैठी। "चलो, 'किचिन' में चलकर पहले चाय और कुछ नाश्ते का प्रवन्ध किया जाये।" नन्दा ने कहा।

"तुम जाकर चूल्हा जलाओ न। मैं यहां सामान लगाता हूं। और खाट-वाट ठीक करता हूँ। न जाने किसकी खाटें हैं। चूल-चूल ढीला हो गया है दोनों का। अभी उन्हें कसकर ठीक करना होगा।"

"पर चूल्हा जलेगा कैसे ? न कोयला है, न लकड़ी, न मिट्टी का तेल।"

"तुम बैठो, मैं अभी सब कुछ लाता हूं बाजार से।"

"अरे बाप रे ! मैं यहां एक मिनट के लिए भी अकेली नहीं बैठूंगी ! इस भुतहे मकान में मुझे एक मिनट के लिए भी अकेली छोड़ कर बाहर मत जाना। मैं भी चलूंगी तुम्हारे साथ।"

"इस तरह डरने से काम कैसे चलेगा ?" राकेश खीझ-भरे स्वर में बोला—"और फिर यह क्यों मान लेती हो पहले ही, कि यह मकान भुतहा है ? अब तो तुम्हें घर पर अक्सर अकेले ही रहना होगा।"

"ऐसा होगा तो मैं अकेली ही भागकर मथुरा वापस चली जाऊंगी।"

"यह क्या बच्चों की-सी बात कर रही हो, नन्दा ? तनिक धीरज से काम लो। शुरू में तो किसी भी नयी जगह आने पर परेशानियाँ होती ही है। अब जब इतनी कोशिशों के बाद यह मकान मिला है, हम लोग किसी तरह ठिकाने आ लगे हैं, तब इस तरह की बातों से तुम मुझे भी नर्वस कर रही हो। मेरी परेशानी देखते हुए और मेरी सारी स्थिति को समझते हुए तुम्हें तनिक भी मेरे ऊपर दया नहीं आ रही है ! मैं नहीं जानता था कि तुम इतनी कठोर व नादान निकलोगी। नन्दा, तनिक समझदारी से काम लो और मेरी विपत्ति में हाथ बटाओ। तुमको तो मैं सदा ही साहसी और धैर्यशालिनी नारी समझता रहा हूं। पर आज तुम्हें क्या हो गया

है ? सुबह से ही चिन्तित, घबरायी हुई-सी और मुझसे भी अधिक परेशान नजर आ रही हो ! आज एक नयी और आदर्श गिरस्ती बनाने में मुझे पूरा सहयोग दो।"

राकेश के कण्ठ-स्वर में ऐसी तीखी और सचमुच की करुणा चीख-चीखकर बोल रही थी कि नन्दा को उस पर तरस आने लगा। उसकी सारी परेशानी और हौलदिली जैसे पल में कपूर बनकर बिला गयी। वह पलंग पर ही अपनी कमर सीधी करके बैठ गयी, और अत्यन्त कोमल स्वर में बोली, "अच्छा ठीक है, मेरा मन अब मजबूत हुआ जा रहा है। अब मेरे बारे में तनिक भी चिन्ता न करो। बाजार जाओ और नोन-तेल-लकड़ी का पूरा प्रबन्ध करो। आटा-दाल-चावल-घी आदि हफ्ते भर के लिए लेते आना। लकड़ी और कोयला तो तुम लेते ही आओगे। जरूरत की कुछ छोटी-मोटी चीजें—कील वगैरह भी लेते आना। मैं कमरे की दीवारों पर कुछ चित्र टाँगकर रखूंगी। कमरा खाली-खाली-सा लग रहा है। निश्चिन्त होकर जाओ, सब शुभ होगा। तुम जितनी देर तक नहीं रहोगे, मैं अकेली बैठी रहूँगी। जाओ, भले आदमी की तरह। तुम्हारा मंगल हो !"

देवी दुर्गा की तरह आशीर्वाद देती अपना दायाँ हाथ वरदान की मुद्रा में राकेश की ओर बढ़ाते नन्दा ने मुस्कराते हुए कहा।

राकेश क्षण-भर के लिए असमंजस की स्थिति में खड़ा रहा। और फिर हाथ में झोला लेकर नीचे जानेवाली सीढ़ियों पर चप्पल फटफटाते हुए बाहर निकल पड़ा।



नन्दा ने क्षणिक आवेश के मोहक क्षण में कह तो दिया कि सब ठीक है और उसके भीतर की सारी घबराहट हवा हो चली है, पर राकेश के चले जाने पर एक ही पल के अन्दर फिर उसके भीतर की भय-भावना पूरे प्रवेग से लौट आयी और कमरे के बाहर चारों ओर के सन्नाटे में बेपेंदे की लुटिया की तरह उसका मन जैसे निरुद्देश्य लुढ़कने लगा। सहसा उसे लगा जैसे भूचाल आ गया हो। और उसके चारों ओर की दीवारें, ऊपर की छत और पांवों के नीचे का फर्श 'मेरी-गो-राउण्ड' की तरह चक्कर काटने लगा है। उसने मारे आतंक के अपने शरीर को चारों ओर से सिकोड़ लिया और बिखरे हुए टुकड़ों को भी बटोरने के प्रयत्न में उसने कोई बात उठा न रखी। पर सब व्यर्थ सिद्ध हुआ। न उसका शरीर और न उसका मन ही तनिक भी स्वस्थ और व्यवस्थित हो पाते थे। फिर भी उसका यह अनुभव था कि बड़े-से-बड़े संकटों के अवसर पर भी उसके भीतर की अनेक परतों में तह-पर-तह जमा हुआ जो धैर्य संकट के क्षणों में उसकी सहायता के लिए अपनी अंधेरी गुफा से बाहर निकल आता था और उसकी रक्षा के लिए एक निर्भीक और वफादार पहरुए की तरह एक लक्ष्मणरेखा-सी खींचकर अंगद के पाँवों की तरह अपने को जमाकर खड़ा हो जाता था, इस समय भी उसका वह चिररक्षक धैर्य उसे दिलासा देता हुआ-सा खड़ा हुआ और उसकी सारी घबराहट पलक-मारते न जाने कहाँ विलीन हो गयी। वह पलंग पर स्थिर बैठ गयी, जैसे कोई तमाशबीन किसी रोचक दंगल की अन्तिम परिणति देखने के लिए कटिबद्ध हो जमकर बैठ गया हो।

भूचाल का वह कृत्रिम या काल्पनिक धक्का जल्दी ही शान्त हो गया और नन्दा के सिर का चक्कर भी समाप्त हो गया। वह एक आतंकित किन्तु अनुभवी और चतुर हिरनी की तरह सावधान और चौकन्नी हो गयी। जैसे उसके जीवन-मरण की परीक्षा की घड़ी उसके सिर पर आकर नाचने लगी हो।

सहसा उसने सुना, जैसे पूरब की ओर के दरवाजे को कोई भीतर के कमरे से खटखटा रहा हो। प्रारम्भ में उस खटखटाने का स्वर बहुत मधुर लगा, जैसे कोई उस दरवाजे पर भीतर से अपनी अँगुलियों द्वारा कोई अनसुनी, मीठी, निराली और मोहक धुन बजा रहा हो। पर कुछ ही क्षण बाद वह धुन नन्दा को खटकने लगी।

पहले तो उसने सोचा कि राकेश लौट आया है और उसे तनिक चौंकाने के उद्देश्य से यह नया खेल खेल रहा है, पर फिर दूसरे ही क्षण उसका भय काल्पनिकता से वास्तविकता का रूप पकड़ने लगा, उसे तत्काल चाणक्य-नीति का यह श्लोक याद आ गया :

तावद् भयात् भेतव्यं यावद्भयमनागतम्।
आगतं तु भयं वीक्ष्य प्रहर्त्तव्यमशंकया॥

यानी—'भय से तभी तक डरना चाहिए जब तक वह सामने उपस्थित नहीं हो जाता है। जब वह सचमुच आ खड़ा हो, तब निःशंक होकर उसका सामना करना चाहिए।

और नन्दा सचमुच निःशंक होकर पूरब की ओर का वह दरवाजा खोलने चली गयी जो उस ओर से खटखटाया जा रहा था। वह दरवाजे से सटकर एक किनारे खड़ी हो गयी। और कुछ सोचकर सुदृढ़ और स्वाभाविक कण्ठ से बोली : "कौन है ?"

जब उस पार से कोई उत्तर नहीं मिला, तब तनिक कड़ककर तीखे अन्दाज में बोली : "कौन है ? जवाब क्यों नहीं देते ? कब से दरवाजा खटखटाया जा रहा है और मेरी दोपहर की नींद एकदम डिस्टर्ब्ड हो गयी है, और अब महाशयजी एकदम चुप हैं। कौन खटखटा रहा है दरवाजा, जल्दी से जवाब दो, वरना............"

"वरना क्या ? वरना आप क्या कर लेंगी ? मुझे फाँसी दिलवा देंगी,

मुझे शायद फाँसी ही दिलवा देंगी ! हाँ ! हाँ ! हाँ ! उल्टा कोतवाल—नहीं नहीं, उल्टा भूत कोतवाल को डाँटे ! ठीक है, आपको जो कुछ करना है, कर लीजिए, मैं कोई जवाव नहीं दूंगा आपके किसी भी प्रश्न का ! और फिर वही खोखला-सा अट्टाहस !"

अव की नन्दा के भय का अन्त नहीं था और वह मन-ही-मन कहने लगी : 'भूत-पिशाच निकट नहिं आवें, महावीर जव नाम सुनावै !...' और इतने में उत्तर के छोरवाले कमरे में सहसा टेलीफोन की घन्टी वज उठी। यद्यपि राकेश और नन्दा दोनों मकान को एक वार अच्छी तरह वारीकी से एक-एक कमरे के हिसाव से देख चुके थे, तथापि टेलीफोन उन्हें किसी भी कमरे में नहीं दिखायी दिया था। फिर भी टेलीफोन की कर्कश घण्टी सुनकर नन्दा के मन को कुछ सहारा मिला। उसने पूरे साहस के साथ उत्तर की ओर का दरवाजा खोला और वेधड़क भीतर चली गयी। क्रेडल से फोन का माउथपीस उठाया और फिर वड़े इत्मीनान के साथ धीरे से वोली : "हैलो !"

दूसरी ओर से आवाज आयी : "हैलो, कौन ? रानी विटिया ?" यह किसी वुजुर्ग की-सी आवाज थी। नन्दा ने तनिक भी विचलित न होकर कहा : हाँ !

"प्रकाश अभी तक घर पहुंचा या नहीं ?"

"अभी आते ही होंगे।" नन्दा ने अति चकित भाव से स्वाभाविक स्वर में कहा।

"मैं आज सवेरे ही केवल दो दिन के लिए यहाँ आया हूं। प्रकाश से मिलना न हो पाया तो वड़ी कसक मन में वनी रहेगी। सुनो, एक जरूरी वात तुमसे और प्रकाश से कहनी है। अच्छा, पहले यह तो वताओ कि भूत का क्या हाल है ? क्या अभी मौके-वेमौके तुम लोगों को तंग करता है ? पिछली वार जव मैं यहाँ—इलाहावाद—आया हुआ था तव सुना था कि वह अव कभी-कभी दिन दहाड़ें भी शरारत करने लगा है। अव क्या हाल हैं उसके ?"

"अव भी वैसा ही हाल है," नन्दा वड़े ही इत्मीनान के साथ वोली। "अभी-अभी उसने मेरे कमरे का दरवाजा खटखटाया और पूछने पर वड़ी

वदतमीजी से जवाव देता रहा।"

"देखो, मैं एक वात तुम्हें निश्चित रूप से वता देना चाहता हूँ। प्रकाश को भी वता देना। वह भूत-वूत कुछ नहीं है। वह एक शरारती आदमी है। उसक नाम ही भूतनाथ है। भूत की वात मन मे लानी ही नहीं चाहिए। और उसकी दुष्टता भी तुम्हारा कुछ नहीं विगाड़ सकती। वह सभी किरायेदारों को इसलिए परेशान करता और डराता रहता है कि वह चाहता है कि मकान में उसके सिवा और कोई किरायेदार न रहने पाये और वह स्वयं विना किराये के सारे मकान पर अपना कब्जा जमाये रहे। हम लोग तुम्हारी 'आण्टी' की हौलदिली के सवव, उसकी शरारतों से तंग आकर मकान छोड़कर भाग चले थे। यह हम लोगों की सरासर गलती थी। तुम लोग इस तरह की गलती मत करना। डटे रहना, वह तुम लोगों का कुछ भी नहीं विगाड़ सकता।"

"क्या पुलिस को इस वात की खवर दे दी जाये ?" नन्दा ने पूछा।

"यह गलती भी न करना। पुलिस उसका कुछ नहीं विगाड़ सकती। वह वड़ा ही चालाक वदमाश है।" उस पारवाले व्यक्ति ने उत्तर दिया। "उससे अच्छा सम्बन्ध रखकर ही तुम आराम से रह सकोगे।"

"अच्छी वात है। आपकी सलाह के लिए वहुत-वहुत धन्यवाद !" कहकर नन्दा ने माउथपीस उठाकर क्रेडल पर रख दिया। रखते ही सोचने लगी कि इतनी जल्दी, हड़वड़ी में कनेक्शन काटकर उसने वड़ी गलती की। दो-चार वातें उस अपरिचित परामर्शदाता से और पूछकर तव सम्बन्ध काटना चाहिए था। पर अव क्या हो सकता था ! वोलने-वाले का फोन-नम्वर भी उसने नहीं पूछा था और न नाम ही। खैर, इतना तो उसने ठीक ही किया। 'रानी' का रोल यदि वह अदा न करती तो शायद उतनी वातें भी मालूम न हो पातीं। फिर भी······!—और इतने में कमरे के वाहर से फिर किसी के हल्के-हल्के खटखटाने की आवाज आयी। उसने घवराट-भरी आवाज में पूछा—"कौन है ?"

"मैं हूँ भूतनाथ। राकेश आ गया क्या ?"

"नहीं, अभी तो नहीं आये। पर आप चाहते क्या हैं ? उनसे आप को क्या काम है ? मुझे वता दीजिए, मैं कह दूंगी उनसे।"

"अब आपको क्या बताया जाये। आप तो मुझे पुलिस के हवाले करने के चक्कर में हैं! पर एक बात अच्छी तरह जाने रहिए। पुलिस को बुलाने पर भी आप मुझसे छुट्टी नहीं पा सकेंगीं। मैं केवल नाम से ही नहीं सचमुच का भूतनाथ हूं!"

"उनसे आपका परिचय कब से है?"

"राकेश और मैं सहपाठी थे। इसलिए मुझसे किसी बात की आशंका आप न करें। मैं राकेश से मिलकर कुछ आवश्यक बातें बताना चाहता हूँ।"



नन्दा ने अपनी उसी घबराहट की हालत में सहसा भीतर से दरवाजा खट से खोल ही तो दिया। पर कोई व्यक्ति उसे नहीं दिखायी दिया। साहस करके वह बाहर बरामदे में चली गयी। वहाँ से देखा, एक आदमी बहुत मैला, पुराना और तनिक फटा-सा गाढ़े रंग का काला कोट पहने एक काली छाया की तरह पूरब की दिशा में खुले रास्ते से बड़ी द्रुत गति से बाहर की ओर निकला जा रहा था। बाहर पाँव रखते ही वह एक बार पीछे की ओर मुड़ा। नन्दा ने देखा—उसका चेहरा-मोहरा आकर्षक था और रंग भी उसका साफ था। उसके भीतर भय का भूत गायब होने लगा। पर उसके रहस्य-भरे व्यक्तित्व ने उसके मन की गहराई को छू लिया था।

"सुनिए!" काँपती हुई-सी, पर बड़ी ही मीठी आवाज में नन्दा ने कहा।

"कहिए !" भूतनाथ बोला।

"आप चले गए ? आइए, बैठिए, चाय पीकर तब जाइए !"

भूतनाथ क्षण-भर के लिए हकबकाया-सा नन्दा की ओर देखता रहा। फिर बोला, "अभी रहने दीजिए, फिर कभी फुरसत में पीऊँगा चाय, राकेश को आने दीजिए !"

"वह अभी आते ही होंगे, तनिक बैठिए तो सही !" और नन्दा ने भीत भाव से देखा, वह व्यक्ति सचमुच उसकी ओर लौटने लगा।

ज्यों-ज्यों वह व्यक्ति उसके निकट आता गया, त्यों-त्यों नन्दा का कलेजा जोरों से धड़कता जाता था। वह पछताने लगी कि उसने किस मूर्खता के चक्कर में फँसकर उसे वापस बुला लिया। यह बेवकूफी क्यों उसके मन में जगी ? वह कहने ही जा रही थी कि अभी आप वापस चले जाइए। आपने ठीक ही कहा था कि उसके लौटने पर साथ ही चाय पी जायेगी ! पर तत्काल उसकी जबान पर जैसे ताला लग गया।

भूतनाथ ने उसके एकदम निकट खड़े होकर कहा : "चलिए, जब आप कहती हैं तब चाय पी ही ली जाय ! बहू के हाथ की पहली चाय बड़ी ही मीठी और शुभ होती है।"

नन्दा ने फोनवाले कमरे के भीतर प्रवेश किया और भूतनाथ भी चुपके-से उसके पीछे हो लिया।

टेलीफोनवाले कमरे में पांव रखते ही नन्दा ने भूतनाथ से कहा, "आप यहीं विराजिए, मैं पाँच मिनट में चाय बनाकर लाती हूँ।"

"कहें तो मैं भी मदद देने आऊँ !" भूतनाथ बडे ही विनम्र और मधुर भाव से बोला। नन्दा ने देखा, इस समय केवल उसके वचन में ही माधुर्य नहीं था, उसके सारे व्यक्तित्व से एक अपूर्व—सौम्य और मधुर सौन्दर्य निखर उठा था। कुछ ही समय पहले उसकी वापसी में जो कर्कशता और मुद्रा में जो कठोरता उसने देखी थी, इस समय उसका तनिक भी अनुमान नहीं लगाया जा सकता था। इस समय वह भूतनाथ से पूर्णतः 'विभूतीनाथ' बना हुआ था—ऐसा प्यारा लग रहा था उसका

व्यक्तित्व !

नन्दा दस-पन्द्रह मिनट बाद दो प्यालों में चाय और एक बड़ी-सी तश्तरी में बिस्किट, मिठाई, नमकीन, काजू आदि नाश्ते का पूरा सामान लेकर जब बाहर लौटी तब भूतनाथ ने बड़े ही आदर और प्रेम से उसके हाथ की चीजें अपने दोनों हाथों में ले लीं, और बड़ी शालीनता के साथ उन्हें कोने में पड़ी मेज पर सजाकर रख दिया।

"आओ बहू, कहीं बैठा जाये !" उसने दो कुरसियाँ टेलीफोनवाली मेज से उठाकर कोनेवाली मेज के पास लगाते हुए कहा।

जब दोनों इत्मीनान से बैठ गये तब चाय का एक घूंट घूंटते हुए भूतनाथ बोला : "जब मैं आपसे बहू कह चुका हूं तब आप हर दृष्टि से मेरी बहू हो ही चुकीं, क्योंकि राकेश को मैं बराबर छोटे भाई से भी सगा मानता रहा हूँ। पर रह-रहकर एक सन्देह मुझे कचोट रहा है।"

"वह क्या ?" नन्दा ने एक मीठी मुसकान मुख के आर-पार झलकाते हुए कहा।

"इतना मेरे आगे स्पष्ट हो गया हैं, पता नहीं क्यों, कि राकेश से अभी तक आपकी शादी नहीं हुई है, और वह यों ही आपको बहकाकर ले आया है। और वह शादी करेगा भी नहीं, इसमें मुझे बहुत सन्देह है।"

नन्दा का हृदय धक् से रह गया और बड़ी तीव्र गति से काफी देर तक धुकधुकाता रहा। जो भय उसके मन को, इलाहाबाद के लिए रवाना होने के पहले ही रह-रहकर प्रति पल तीखी पीड़ा के साथ कचोट रहा था, वह भूतनाथ की बात सुनकर पूरे आवेग से उभरकर हहर उठा।

फिर भी उसने अपने आवेग को किसी तरह संयत किया और अपेक्षाकृत शान्त भाव से बोली : "इस प्रकार का सन्देह आपको क्यों हो रहा है ?"

"इसलिए कि मैं राकेश के स्वभाव से अच्छी तरह परिचित हूँ। जब वह यहाँ युनिवर्सिटी में पढ़ता था, तब भी वह एक सुन्दरी कुमारी को बहकाकर, हॉस्टल छोड़कर अलग एक मकान में जाकर रहने लगा था। मैं उसे बार-बार कहता था कि विवाह कब करोगे ? पर वह मेरे प्रश्न को हँसी में उड़ाकर कहता था, तुम भी बड़े अहमक हो। तुम क्या मुझे

इतना बेवकूफ़ समझते हो कि किसी चक्कर में एक गलती कर चुकने के बाद मैं इतनी जल्दी उससे भी बड़ी गलती कर बैठूंगा ? इस भ्रम में मत रहो, दोस्त, कि मैं इस जीवन में कभी शादी करूंगा। शादी के चक्कर में पड़नेवाले अनेक समवयस्क और सहधर्मा कुमारों की दुर्गति मैं बखूबी देख चुका हूं। सब-कुछ देखते-सुनते हुए मैं क्यों जानबूझकर अन्धा बन जाऊँ और अपना सारा जीवन दाँव में लगा बैठूं ?' मैंने कहा, 'तब उस भोली-भाली लड़की का क्या होगा जो तुम पर सम्पूर्ण रूप से विश्वास करके विवाह की शुभ-वेला की प्रतीक्षा में जी रही है और उस घड़ी के लिए अपना सब-कुछ दाँव में लगा चुकी है ?' राकेश बोला, 'तुम इस दृष्टि से क्यों नहीं सोचते कि उस लड़की को मैंने नहीं फाँसा है, बल्कि उसी ने ऐसी चालाकी से मुझे फाँसा है कि मुझे वह नारी-जाति के सभी कुटिल संस्कारों का पूरा जाल फैलाकर मेरे जीवन के चारों ओर एक नाग-पाश बिछाये बैठी है कि मैं इस छोटी उम्र में ही अपनी स्वतन्त्र इच्छा से एक पग भी किसी ओर बढ़ने में असमर्थ हूँ, और मेरे भविष्य के सारे अरमान मिट्टी में मिल गये हैं। मैं भिल्लिनी के चंगुल में फँसे हुए हिरन की तरह सारी चौकड़ियाँ भूल चुका हूँ और मेरा जीवन, जो उसके जीवन से कई गुना अधिक मूल्यवान है, चारों ओर से विकट संकटों से घिर गया है। यह बन्धन मुझे तोड़ना होगा, वरना मेरा सर्वनाश सुनिश्चित है।' और उसने सचमुच में जल्दी ही यही किया। किसी उपाय से अपने को उस तथाकथित 'सर्वनाशी बन्धन' से मुक्त कर लिया। मुझे उसकी यह सारी चक्करबाजी इतनी घृणित लगी कि मैंने उससे बोलना ही छोड़ दिया। कुछ ही दिनों बाद मैंने सुना कि उस लड़की ने संसार में कहीं भी कोई सहारा न देखकर आत्म-हत्या कर ली है। राकेश को इस समाचार से अजहद खुशी हुई और वह अपने निर्बन्ध पंखों को फिर मुक्त भाव से फड़फड़ाने लगा।"

नन्दा आँखें फाड़-फाड़कर और कानों के परदे पूरे खोलकर स्तब्ध भाव से भूतनाथ के मुंह से राकेश के कारनामे सुन रही थी। एक बार क्षण-भर के लिए उसे लगा कि वह चक्कर खाकर बरबस कुरसी पर से नीचे गिर पड़ेगी। पर न जाने अपने भीतर सुरक्षित किस शक्ति से

उसने अपने-आपको संभाला। और संभलते ही शान्त भाव से बोली : "देखिए जेठजी, आपने उनके स्वभाव का वर्णन करके मुझे अवश्य एक बहुत ही उपयोगी जानकारी दी है। इसके लिए मैं आपको हार्दिक धन्यवाद देती हूँ। पर एक छोटा-सा आग्रह मेरा भी है। आप कृपा करके अपनी रहस्यमयता का परदाफाश तो करें। आप किस चक्करबाजी के फेर में पड़कर इस मकान में कब से और किस उद्देश्य से लुक-छिपकर निवास कर रहे हैं? और मुझे बात-बात में भय दिखाने का आपका उद्देश्य क्या है?"



भूतनाथ सहज भाव से जैसे मौन अट्टहास कर उठा। वह अट्टहास उसकी आँखों की दीवारों और गालों की उभरती हुई नसों की विस्फोटक रेखाओं से टकराकर जैसे फट पड़ने को छटपटा रहा था। वह बोला। "देखो वहू, तुमने एक ऐसे रहस्य की बात पूछी है जिसे मैं किसी के भी आगे खोल न पाया। पर, तुमसे अब मैं कोई भी बात छिपाना नहीं चाहूँगा, क्योंकि मैंने देख लिया है कि तुम सीमातीत रूप से भोली, सहज और निश्छल हो। तो सुनो' मेरा रहस्य अब कुछ ऐसा नहीं रहा जिसे किसी से भी छिपाया जा सके। मैं जीवन के आरम्भ में विकट आर्थिक और सामाजिक संघर्षों से टकराता रहा हूँ। इलाहाबाद मुझे पसन्द है और मैंने सदा के लिए यहीं बस जाने का निश्चय भी कर लिया था। पर यहाँ अपना मुंह छिपाने को मुझे कहीं एक कमरा भी किराये

पर नहीं मिल सका।"

"मुँह छिपाना क्यों चाहते हैं आप ?"

"कृपा करके यह न पूछो अभी। केवल इतना ही जाने रहो कि अपने किसी दुष्कर्म के कारण नहीं, वरन् अपने ऊपर समाज-द्वारा अन-अपराध पकड़नेवाली मार की चोटों से वचने के लिए मैं कहीं छिप जाना चाहता था। पर छिपने को कहीं कोई भी ठौर मुझे नहीं मिल पाया। वाहर की खुली हवा और खुले पानी के वीच पशु भी रहना पसन्द नहीं करते, मैं तो मनुष्य हूँ। जव दिन-रात ढूँढते रहने पर भी कहीं कोई कमरा या मकान किराये पर नहीं मिल पाया तव यह खाली मकान मुझे मिल गया। खाली यह इसलिए मिला कि इसे लोग भुतहा समझते थे और भूतों के कुछ उपद्रव यहाँ वीच में होते देखे भी गये थे। जो भी हो, जव भूतों की कृपा से यह वड़ा और सुविधा का मकान मुझे एक वार मिल गया फिर उसे कभी छोड़ने को वाध्य न होना पड़े, इस वात को ध्यान में रखकर मैंने उपाय सोच लिया, जो मुझे अधिक सुविधाजनक लगा। वावजूद इस अफवाह के कि यह मकान भुतहा है, कुछ निडर लोग इसमें वसने के इरादे से आते रहते थे। कहीं कोई किरायेदार अधिक किराया देकर यहाँ वसने का दृढ़ संकल्प करने न आ वैठे और भूतों का कोई उपद्रव न देखकर, यहाँ वस जाये, इस भय से मैंने निश्चय किया कि जो भी यहाँ आकर रहने लगेगा उसे डराने के लिए मैं स्वयं ही भूत वन जाऊंगा। मेरी यह तिकड़म चल गयी। जो भी व्यक्ति यहाँ दो-एक दिन रह लेता, तीसरे ही दिन मैं इस तरह उपद्रव मचाना शुरू कर देता जैसे मैं सचमुच का भूत ही हूं। पहले ही से फैली हुई अफवाह इस सम्वन्ध में मेरी सहायक सिद्ध होती रही। चौथे ही दिन नया किरायेदार वोरिया-विस्तर वाँधता और वाँधकर सटक सीताराम हो जाता है। इसी तरह के उपद्रव मैं सभी किरायेदारों के साथ करता रहा। इस तिकड़म से इस अफवाह में सचाई की पक्की मुहर लग गयी कि यह मकान निश्चित रूप से भुतहा है और फिर कई महीनों तक यहाँ किसी भी किरायेदार को फटकने की हिम्मत ही नहीं हुई। पर तुम लोग चूँकि इस शहर में नये-नये आये हो, इसलिए तुम्हारे कानों तक सम्भवतः यह अफवाह नहीं पहुँची, वरना शायद तुम

यहाँ प्रवेश करने का साहस न करते। पर जब मैंने राकेश को देखा उसके साथ एक अच्छी, भली, नवेली और भोली नारी को भी देखा, तब मेरा संकल्प टूट गया। तुम लोगों की मुसीबत मैं समझ गया। मेरा इतने दिनों का संकल्प टूट गया और मैं तुम्हारे आगे सहज रूप में प्रकट हो गया। बस मेरे 'रहस्य' की कहानी इतनी ही है। अपने पुराने साथी राकेश को देखकर मुझे इतनी प्रसन्नता हुई, इसका अनुमान न तुम जान सकती हो और न राकेश ही लगा सकेगा। इतने बड़े मकान में अकेले रहकर भूत का नाटक रचते हुए मैं मानवीय सम्पर्क के लिए किस कदर उत्सुक हो उठा था, इस पीड़ा का वर्णन सम्भव नहीं है। अब तुम लोग निश्चिन्त होकर आराम से इस मकान में रहो। मैं अपने उपयुक्त निवास की खोज में फिर अनन्त काल तक दर-दर भटकता फिरूँगा।"

"नहीं जेठजी!" नन्दा ने अपने सहज-कोमल स्वर में कहा: "यह कैसे हो सकता है कि हमारे यहाँ रहते आप दर-दर भटकते फिरें? हमारा घर आप ही का है, यदि यह आश्वासन हम लोग आप में न जगा सके तो हम लोगों से बढ़कर कृतघ्न फिर आपको कहीं न मिलेगा। अब आप बिना किसी तकल्लुफ के हमारे ही साथ यहीं रहिए। इतना विश्वास कीजिए कि यह कोई औपचारिकता की बात मैं आपसे नहीं कह रही हूँ, वरन् सच्ची भावना से प्रेरित होकर कह रही हूँ। इसे मेरा नितान्त आग्रह समझ लीजिए।"

"देखो बहू, मेरी स्पष्टवादिता के लिए क्षमा करना। अभी राकेश की ओर से कोई अधिकार तुम्हें प्राप्त नहीं हुआ है। राकेश से मिलकर उसका रुख देखकर मैं इस सम्बन्ध में अपना कोई मत निश्चित कर सकूँगा।'

"बड़ी देर हो गयी है उन्हें। अभी तक नहीं लौटे!"

"कहाँ, किस काम से गया है वह?"

"नोन-तेल-लकड़ी का प्रबन्ध करने के सिवा और क्या आवश्यक काम हो सकता है हम-जैसे भूले-भटकों के लिए?"

"तब इसके लिए चिन्ता करने का कोई कारण तुम्हारे लिए नहीं होना चाहिए। वह आता ही होगा। नोन-तेल-लकड़ी की बात सुनने

और कहने में तो आसान लगती है, पर है यह बड़े झंझट का काम।”

“तभी तो मैं कहती हूँ कि उन्हें इस चक्कर में इसके पहले कभी नहीं पड़ना पड़ा। यह वसी ही वात है उनके-जैसे व्यक्ति के लिए, जैसे किसी कवि को चक्की पीसने का काम सौंपा जाये !”



नीचे से दरवाजा खटखटाये जाने की आवाज आयी।

नन्दा ने आराम की एक लम्बी साँस लेते हुए कहा : “लीजिए, आखिर आ ही गये। मैं तो मारे चिन्ता के अत्यन्त हौलदिल हो उठी थी।”

“हौलदिल होने की वात क्या थी ?” भूतनाथ ने पूछा।

“इस आशंका से कि कहीं किसी एक्सीडेन्ट के चक्कर में न फँस गये हों।”

“वहू, तुमने एकदम कवियों का-सा सुकुमार हृदय पाया है। साध
रण-सी वात से तुम इस कदर घवरा उठती हो ! तनिक धैर्य काय
रखने का स्वभाव वनाओ, वरना आज की दुनिया में तुम कदम-कदम
भयभीत होती रहोगी। आज की इस दुनिया में व्यक्ति के लिए भय
सिवा और वचा ही क्या है ? वस, जीने का एकमात्र सहारा यही भय
शेष रह गया है। सव समय भय को हृदय से जकड़े रहो और उसी
चिन्ता में जीते रहो ! यह कोई जीना नहीं है, वहू, इतना तो तुम मा
ही होगी। यदि धैर्य की पूँजी खाली हो चुकी हो तव तो प्रतिपल

नरक को ही अपना आश्रय बनाये रखना होगा। यह जीना नहीं, प्रतिपल मृत्यु को अपना साथी बनाये रखना है—इस मानसिक स्थिति से जल्दी ही उबरो बहू, वरना जीवन का एक भी क्षण चिन्ता और परेशानी से खाली नहीं बीतेगा। बड़ी-से-बड़ी दुर्घटना के लिए सब समय तैयार रहना ही पड़ेगा—आज के जीवन की वास्तविकता तो तुमको कभी भय से मुक्त रहने ही नहीं देगी। इसलिए कम-से-कम, अपने काल्पनिक जगत् को भय-रहित बनाये रखने के प्रयत्न में जुटी रहो। और फिर, आज तो मनुष्य का कल्पना-लोक भी भूतों के उपद्रवों से गुंजायमान है! क्यों?" कहकर भूतनाथ फिर एक बार मुखर अट्टहास कर उठा। इस बार का उसका अट्टहास, नन्दा को तनिक भी भयावह न लगकर अत्यन्त सुखद लगा।

नीचे का दरवाजा पहले से अधिक जोर से खटखटाया जाने लगा था। नन्दा इत्मीनान से कुरसी से उठी और धीर पगों से सीढ़ियों के नीचे उतरने लगी। नीचे जाकर जब उसने दरार से देखा कि दरवाजा खट-खटानेवाला व्यक्ति राकेश ही है, कोई दूसरा नहीं, तब उसने निश्चिन्तता की साँस ली। "बड़ी देर लग गयी तुम्हें सामान खरीदने में। इस बीच तुम्हारे एक घनिष्ठ मित्र मेहमान बनकर आये हुए हैं।" नन्दा ने व्यंग्य की एक बेमालूम-सी मुसकराहट अपने चेहरे पर बिखेरते हुए कहा।

"मेहमान! कौन?" राकेश ने चौंकते हुए पूछा।

"चलो, चलकर खुद ही देख लो। मेरा तो उनसे कोई परिचय कभी नहीं रहा। आज ही देख रही हूँ।"

और वह राकेश का दायाँ हाथ बड़े स्नेह से बलपूर्वक खींचती हुई उसे ऊपर ले गयी।

सामने बैठे हुए व्यक्ति को देखकर राकेश चौंक पड़ा। कुछ देर तक बड़े ही गौर से देखता रहा, पर शायद फिर भी उसे ठीक से पहचान पाया हो—उसकी भ्रमित और सन्दिग्ध दृष्टि ऐसा नहीं बताती थी।

"आओ आओ कैलाश—नहीं राकेश, बड़ी देर से तुम्हारा इन्तज़ार कर रहा था।" भूतनाथ ने कहा।

"क्षमा कीजिए, मैं अभी तक ठीक से पहचान नहीं पाया हूं। चेहरा

कुछ पहचाना हुआ अवश्य लगता है, पर यह आकृति ठीक किस व्यक्ति की है, यह पहचानने में कठिनाई का अनुभव कर रहा हूँ।"

"अब क्यों पहचानना चाहोगे उस व्यक्ति को जो सदा अपनी शुभाकांक्षाओं के कारण तुम्हारी आँखों का काँटा ही बना रहा। भूतनाथ की थोड़ी-बहुत याद तुम्हें अभी तक होगी, ऐसी आशा करता हूँ। मैं तो आज सुबह अपने कमरे की दरार से झाँकते ही तुम्हें पहचान गया था।

"अरे, तुम क्या सचमुच भूतनाथ हो ? माफ करना, मित्र, तुम्हारे बताने पर भी मुझे विश्वास नहीं हो पा रहा है। मैंने अपने पुराने साथियों में से किसी एक के मुँह से सुना था कि तुम्हारी मृत्यु हो चुकी है।"

"किस दुष्ट ने तुम्हें यह अशुभ समाचार सुनाया ? मैंने तो यह अफवाह कभी नहीं सुनी।"

"तुमने तो अपना नाम सार्थक कर दिया, मित्र। आज लग रहा है कि 'भूतनाथ' तुम्हारा बहुत ही उपयुक्त नाम है। मैं तो इस चक्कर में हूँ कि मेरे आगे जो व्यक्ति बैठा है वह जीवित लोक का प्राणी है या भूतलोक का ? तुम्हारे चेहरे में मैं भूतलोक की-सी एक अजीब-सी छाया साफ़ देख रहा हूँ। अब बताओ, इतने वर्षों तक तुम कहाँ रहे और क्या करते रहे ?"

"तुमने ठीक कहा है, इतने दिनों तक मैं भूत बनकर ही जीता रहा हूँ। इसके अलावा मेरे पास जीने के लिए और कोई चारा था भी नहीं। अभी तक मैं इसी मकान में छिपकर दिन काटता रहा हूँ। जो भी किरायेदार यहाँ आता उसे रात में डराकर भगा देता था। तभी से यह भुतहा-मकान कहा जाने लगा। बहू को तो मैंने आज दोपहरी में ही डरा दिया था। पर चूँकि मैंने तुम्हें सुबह ही देख लिया था, इसलिए मैंने निश्चय कर लिया था कि तुम लोगों को कहीं नहीं जाने दूँगा। और बहू जब सचमुच डरने लगी तब उसे दिलासा देता रहा हूँ और उसे मैंने विश्वास दिला दिया कि मैं भूत नहीं, जीता-जागता मनुष्य हूं। इतना ही नहीं, मैंने यह विश्वास भी दिला दिया कि मैं तुम्हारा भूतपूर्व मित्र और घनिष्ट साथी रह चुका हूँ। मैंने यह निश्चय भी कर लिया कि आज ही अपने इस आराम के अड्डे को छोड़कर चला जाऊंगा और किसी फुटपाथ या पार्क

की शरण लूँगा। पर वहू ने यह आश्वासन देकर कि मैं तुम लोगों के साथ ही भले आदमियों की तरह रहकर जीवित मनुष्यों का-सा जीवन विताता रहूँ। मुझे पूरा विश्वास है कि तुम्हें इस वात पर कोई ऐतराज न होगा। कहो तो यहीं रह जाऊँ?"

"इसी वीच तुमने इसे वहू भी वना लिया। जव वहू की राय है तव भाई इस समझौते में मैं क्यों विघ्न डालने लगा! तुम वड़ी प्रसन्नता से यहीं रह जाओ।"

"तुम लोगों को इस परदेश में नौकर की जरूरत तो पड़ेगी ही। तव तक मुझे ही इस पद पर क्यों नहीं नियुक्त कर लेते?"

"तुम नौकर नहीं, प्रभु वनकर रहो, भूतनाथ! केवल इतनी ही प्रार्थना है कि अव अपना यह अशुभ नाम वदल डालो! अव से मैं तुम्हें 'भूतनाथ' न कहकर श्यामनाथ कहूँगा। तुम्हें क्या कोई आपत्ति है इसमें?"

"तनिक भी नहीं," हार्दिक मुसकान मुख पर झलकाते हुए भूतनाथ उर्फ श्यामनाथ ने कहा।

नन्दा ने पहली वार उसके मुँह पर एक प्यारी और करुण मुसकान खिलती हुई देखी। देखकर उसका हृदय गद्‌गद् हो उठा और इत्मीनान की अनुभूति से उसके अन्दर निर्मल शान्ति छा गयी। उसने इस वात पर भी गौर किया कि भूतनाथ इस समय वहुत ही सुन्दर और सुशील लग रहा था। देखकर वह पुलकित हो उठी। उस दिन से वे तीनों प्राणी व्यवस्थित रूप से उसी मकान में रहने लगे।



गरमी भरपूर पड़ने लगी थी। जेठ का महीना उग्रतम रूप धारण कर चुका था। नन्दा को गरमी की पीड़ा वहुत सताने लगी थी—विशेषकर दोपहर से लेकर शाम तक। वहुत तेज लू चलने लगी और खस की पट्टी का प्रवन्ध करने की याद राकेश के माथे में उठी ही नहीं थी। नन्दा इस का इन्तजार कर रही थी कि राकेश विना कुछ कहे ही स्वतःप्रेरित होकर खस की टट्टी के प्रवन्ध में जुट जायेगा। पर राकेश न जाने क्या सोचकर इस सम्वन्ध में एकदम मौन साधे वैठा रहा। एक दिन नन्दा वहुत कुछ उदासी का-सा अनुभव करती हुई पड़ोस की एक नव-परिचिता महिला के यहाँ चली गयी। जब तीसरे पहर लौटकर आयी तव उसने अपने कमरे में पहुंचकर देखा कि खिड़की में ताजा खस की टट्टी लगी हुई है और दरवाजे में खस की टट्टी का एक पूरा घेरा-सा डाल दिया गया है और 'भूतनाथ' उस पर एक पिचकारी से पानी छिड़कता जा रहा है। उसे एक वड़ी ही सुखद ठण्डक का अनुभव हुआ और वह आराम से अपने पलंग पर लेट गयी।

लेटे-लेटे वह इस वात का हिसाव लगा रही थी कि नोन-तेल-लकड़ी में से कौन चीज कितनी चुक गयी है। तत्काल उसे याद आया कि राकेश दो दिन पहले जो थोड़ा-सा कोयला वड़े कष्ट के साथ लाया था वह चुक गया है और चाय वनाने तक के लिए भी दो कोयले नहीं वचे हैं। वह वेचैन हो उठी और घवराकर राकेश को सूचित करने गयी। राकेश उस समय आराम से खर्राटे भर रहा था। उसके कमरे में खस का परदा लग चुका था। उस पर नन्दा को दया आने लगी और उसे जगाकर

उसकी एकान्त शान्ति में विघ्न डालने का साहस उसे नहीं हुआ। वह लौटने ही जा रही थी कि सहसा राकेश की आँखें खुल पड़ीं और नन्दा को देखकर उसने खाँसना शुरू कर दिया।"क्यों, क्या बात है? अब काहे का कष्ट आ पड़ा!"

"कष्ट विशेष कुछ नहीं, यह बताने आयी थी कि कोयला एकदम चुक गया है। चाय कैसे बनेगी?"

"भाड़ में जाय तुम्हारी चाय और कोयला।" राकेश ने झल्लाकर कहा, "इतनी-सी बात के लिए मुझे परेशान करने क्यों आयीं? अपने भूतनाथ से कहो। आखिर वह किस मर्ज की दवा है? नोन-तेल-लकड़ी के झंझट में मुझे तनिक भी फँसाया न करो, मैंने अन्तिम रूप से यह बात तुमसे कह दी, जाओ।" बड़े ही कड़े स्वर में राकेश ने कहा: "जब से यहाँ आया हूँ, तब से एक लाइन भी नहीं लिख पाया! इस तरह कैसे काम चलेगा?"

नन्दा खीझकर, एक नये पहलू से अपनी स्थिति को ठीक से समझने का प्रयत्न करती हुई बाहर निकल आयी। दरवाजे के बाहर निकलते ही उसे भूतनाथ दिखायी दिया। भूतनाथ नन्दा को बाहर निकलते देखकर एक आड़ में गायब हो गया। नन्दा घबराती हुई रुक-रुककर अपने कदमों को आगे बढ़ाती हुई उसी की ओर बढ़ी। पर भूतनाथ बाहर सीढ़ियों के नीचे बड़ी तेजी से उतरता हुआ दीखा। नन्दा उसे रोकने को कहने जा रही थी, पर वह हवा की गति से चलता ही रहा और नन्दा चुप लगा गयी। उसने सीधे जीने के नीचे जाकर बाहर का दरवाजा भीतर से बन्द कर दिया और फिर अपने कमरे में वापस आकर चुपचाप पलंग पर लेट गयी। लेटे-लेटे उसका मन इस आशंका से भर गया कि भूतनाथ इस मकान में किसी असुविधा की गन्ध पाकर, सदा के लिए कहीं चला न गया हो और जाने से पहले उसकी एक बात भी उससे नहीं हो पायी।

आधा घण्टा भी नहीं बीतने पाया था कि नीचे किसी ने बड़ी ही मीठी आवाज में दरवाजा खटखटाया। नन्दा को नींद नहीं आ रही थी और उसके कान बराबर नीचे के दरवाजे की ओर ही लगे हुए थे। वह हड़बड़ाती हुई उठी और नीचे उसने जाकर दरवाजा खोल दिया। देखा,

भूतनाथ अपने दोनों हाथों में एक मैला-सा बोरा पकड़े खड़ा है।

"यह क्या ले आये ?" बातचीत का बहाना मिलने से नन्दा प्रसन्न थी।

"कुछ नहीं, एक मन कोयला भरवाकर पास ही से लेता आया हूँ। कहाँ रखूँ ?"

"चलिए, किचिनवाले कमरे में ही रख दिया जाये।" भूतनाथ बोरे को वहीं ले गया।

नन्दा आग जलाने की तैयारी कर ही रही थी कि भूतनाथ ने मिनटों में आग जलाकर तैयार कर दी। एक केतली में पानी भरकर उसने उसे चूल्हे पर चढ़ा दिया।

"कोयला तो आप ले आये पर पैसा नहीं ले गये। लीजिए ये पैसे।" कहकर नन्दा ने एक दस का नोट उसकी ओर बढ़ा दिया।

"पैसा मेरे पास था, अभी और एक मन के लिए मेरे पास पैसा बचा है। कल दाल, चावल, आटा, तेल, घी और दूसरी चीजें मँगाते हुए तुमने जो पच्चीस रुपये मुझे दिये थे, उनका हिसाब नहीं माँगा। मैं भी बाकी रुपये लौटाना भूल गया था। उसी में से एक मन कोयला ले आया हूँ। ये लो, छह रुपये बारह आने बचे हैं। हिसाब लिखकर फिर दूँगा।"

"आप ऐसा कहकर मुझे शर्मिन्दा कर रहे हैं, जेठजी, मैंने आप से हिसाब माँगा तो नहीं।"

"अच्छा, अब तुम इतनी कृपा करो कि सीधे ऊपर जाकर आराम करो, मैं अभी चाय बनाकर लाता हूँ। नाश्ते का सामान थोड़ा-सा लेता आया हूँ।"



नन्दा विना तनिक भी वहस किये सीधे ऊपर चली गयी और अपने कमरे में लेटे-लेटे सोचने लगी कि उसके जीवन में आराम का यह नया ही अध्याय शुरू हो रहा है। जव प्रायः पन्द्रह मिनट वाद भूतनाथ चाय और नाश्ते का सामान लेकर ऊपर आया तव नन्दा ने टेलीफोनवाली मेज खाली करके उस पर सारा सामान सजाकर करीने से लगा दिया। नन्दा राकेश को वुला लायी। राकेश आँखें मलता हुआ चला आ रहा था। भूतनाथ लोकनाथ से छोटे-छोटे समोसे, दालमोठ और दूसरी दुकानों से कुछ चुनी हुई मिठाइयाँ लेता आया था। राकेश उन चीजों पर गहरा हाथ मारता हुआ, मुँह में ठूंसता जाता था। एक वार भी उसने यह पूछने की आवश्यकता नहीं महसूस की कि यह सारा सामान कौन लाया है, कहाँ से और कव? वह इतना समझ रहा था कि चुपचाप सारा माल गप्प करते चले जाने में ही भलाई है। सभी चीजें उसे विशेष पसन्द आयीं।

"मैं तो समझता था कि मथुरा की मिठाइयों और नमकीन से वढ़कर कोई चीच किसी दूसरे शहर में नहीं मिल सकती, पर ऐसी चीजें मथुरा में तो क्या, आगरे में भी नहीं मिलतीं। कहाँ से लायी हो?" नन्दा की ओर देखते हुए राकेश ने प्रश्न किया।

"मैं नहीं, ये लाये हैं।" कहकर नन्दा ने आँखें नीची कर लीं।

"वाह भाई भूतनाथ, तुम हो नम्वरी वो…"

"डाकू!" भूतनाथ ने उसका वाक्य पूरा करते हुए कहा।

"अरे राम-राम, ऐसी वात न कहो। तुम मेरे कितने वड़े रक्षक हो,

इसकी कल्पना भी ठीक से नहीं कर सकोगे।"

"नहीं भाई, मैं एक अनाथ भूत हूँ, मैं तुम्हारी क्या रक्षा कर सकता हूँ!"

"तुम भूत नहीं, स्वर्ग-दूत हो।"

"कह लो सभी, जो कुछ कहना चाहते हो। तीखे व्यंग्य के साथ कह डालो! अभी तुम जीवन में सुरक्षित हो!"

"और तुम?"

"मैं वह अरक्षित 'भूत' हूँ या जीव ही कह लो मुझे तुम, जिसके लिए सृष्टिकर्त्ता ने न जल में कोई स्थान बनाया है, न थल में और न अन्तरिक्ष में ही।" भूतनाथ के कण्ठ से और चेहरे से एक ऐसी गहरी निराशा टपक रही थी, जो पल में सारे संसार को लील सकती थी। नन्दा भी यही सोच रही थी। इतनी बड़ी निराशा विश्व के किस महा-उदर में समा पायेगी। नन्दा मन-ही-मन प्रश्न करने लगी।

सहसा राकेश उठ खड़ा हुआ और नन्दा को सम्बोधित करता हुआ बोला, "मैं जा रहा हूँ, चौक की तरफ। जो कुछ मँगाना है बाजार से, एक कागज के टुकड़े पर मुझे लिखकर दे दो! छोटी या बड़ी सभी आवश्यकता की चीजें लिख दो। सभी चीजें एक-साथ लेता आऊँगा। बार-बार मँगाना अच्छा नहीं लगता। महीने-भर का पूरा सामान लिख लो।" और वह कपड़े बदलने अपने कमरे में चला गया।

जब कपड़े बदलकर बाहर आया तब नन्दा ने उसके हाथ में कागज का एक लम्बा-सा पुरजा थमा दिया। नजर फेरकर राकेश ने वह पुरजा पढ़ा और फिर अपनी पैण्ट की जेब में ठूँस दिया।

"अच्छा भाई अब तो जाना ही पड़ेगा।" राकेश ने एक लम्बी जम्हाई लेते हुए कहा, "अब मुक्ति नहीं मिल सकेगी। उठो भाई भूत—नहीं-नहीं श्यामनाथ! बिना तुम्हारी सहायता के यह फेहरिस्त आज पूरी नहीं हो सकेगी।"

भूतनाथ तत्काल उठा, जैसे पहले से ही राकेश के प्रस्ताव के लिए तैयार बैठा हो।

जब भूतनाथ कपड़े पहनकर तैयार हो गया, तब नन्दा के पा

बड़े ही मीठे स्वर में बोला, "अच्छा बहूजी, अब चलते हैं। तब तक तुम अकेले ही इस मकान में 'बोर' होते रहना।"

नन्दा ने राकेश से एकान्त में कहा, "मैं पहले से ही जानती थी कि यह काम तुम्हारे अकेले के बस का नहीं है। अब बताओ, कितने रुपये दूं तुम्हें ?"

"तुम अपने अन्दाज से जितना ठीक समझो। मैं क्या बताऊँ ? मुझे बाजार की चीजों के दाम का कोई अनुभव नहीं है। अच्छा यह बताओ, फेहरिस्त के बीच में यह क्या लिखा है ? मैं पढ़ नहीं पा रहा हूँ।" पुरजा जेब से निकलकर दिखाते हुए राकेश ने कहा।

"अरे, इतना साफ लिखा है फिर भी नहीं पढ़ पाते !—ऊपर लिखा है बरतन, और नीचे···

"बरतन !" अत्यन्त चकित भाव से राकेश बोला। "कैसे बरतन और किसलिए ?"

"अरे, इतनी-सी बुद्धि तुममें नहीं है। खाना पकाने और खाने के बरतन। और कैसे बरतन ?"

"अरी भागवान, यह भी तो लिख दो कि किस चीज के बने बरतन ? स्टील के या पीतल के या सादे लोहे के, ताँबे के या फूल के ? विस्तार से लिख दो, ताकि फिर लौटने की जरूरत न पड़े। और यह नीचे क्या लिखा है ?"

"क्रॉकरी", नन्दा ने शान्त भाव से कहा।

" 'क्रॉकरी' के अन्तर्गत बहुत-सी चीजें आती हैं। प्याले चाहिए या पॉट ? विस्तार में इसकी भी पूरी फेहरिस्त लिख दो। जानती हो, आज-कल 'क्रॉकरी' के दाम कितने बढ़ गये हैं ?"

"अरे भलेमानस, किस चीज के दाम घटे हैं, यह तो बताओ।"

"तब तो हमारा दिवाला ही पिट जायगा। इतने रुपये हैं कहाँ। क्या कुछ 'आइटेम्स' इस फेहरिस्त में काटे नहीं जा सकते ? दो-एक महीने बाद फिर ले लिये जायेंगे। अभी जल्दी क्या है ?"

"अरे भई, दो-एक दिन के भीतर ही पड़ोस के लोगों का ताँता लगना शुरू हो जायेगा, देख लेना। उन्हें चाय-वाय पिलायेंगे या नहीं ?

इसलिए 'क्रॉकरी' का 'आइटेम' तो कट ही नहीं सकता। बरतन तो अपने खाने के लिए भी नहीं हैं। पकाने के लिए भगोना, कढ़ाई, बटलोहा आदि चीजें तो अनिवार्य रूप में आवश्यक हैं। अगर रसद की चीजें ही काट देना चाहो तो काट डालो। कुछ दिन फाकाकशी ही सही।"

"अरे नहीं, नहीं, इस तरह की बातें न सोचो। फाका करें हमारे दुश्मन।" राकेश ने कहा।

"यह कहो कि दुश्मनों को भी कभी फाका न करना पड़े। तब कौन-सा 'आइटेम' काटा जाय ?"

"बस-बस, अब मैं समझ गया। इनमें से कोई आधी चीज भी नहीं काटनी होगी। नयी गिरस्ती जमा रहे हैं तब सिर मुंडाते ओलों से क्यों डरें।"

"राम ! राम ! ऐसा न कहो ! सिर मुंडावें...! हम तो मौज करेंगे और खुशी में नये कपड़े बनवायेंगे और नये कपड़े सिलवायेंगे।"

"पर यह भूतनाथ कहाँ से आ टपका !" राकेश ने प्रायः फुसफुसाते हुए धीरे से कहा, "हमारी सारी खुशियाँ छीने ले रहा है।"

"और फिर अभी शादी भी तो करनी है। उसकी रंगरेलियों के लिए भी तो पूंजी इकट्ठी करनी होगी।" नन्दा बोली।

"तो डालेंगे कहीं डाका ! और कहाँ से जमा करेंगे रुपये ?"

"डाका तुम्हीं डालना—अपनी यूनिवर्सिटी के छात्रों के साथ मिलकर। इस काम के लिए एक स्वयंसिद्ध साथी तो अपने-आप तुम्हारे पास आ टपका है—जो जी में आये करो तुम ! अब मुझसे अधिक बात न करो। मेरे सिर में दर्द होने लगा है।" कहकर नन्दा मुंह ढाँपकर पलंग पर लेट गयी।

राकेश का बाहर जाने का सारा उत्साह ठण्डा पड़ गया और वह भी अपने कमरे में जाकर हाथ-पाँव फैलाकर चित लेट गया। सोचने लगा : "इस बीहड़ परिस्थिति में अब क्या उपाय हो सकता है, दो दिन के लिए भी इस परदेश में जीने को कौन यहाँ उसे रुपये उधार देगा और वर्तमान

संकट से कैसे उसका वेड़ा पार होगा ? और फिर उसे एक पराक्रम करने की प्रेरणा हुई। उसने निश्चय किया कि उस निपट असहाय अवस्था में परदेश में प्राण त्यागने की अपेक्षा यही वेहतर होगा कि वह तत्काल उठ कर कहीं कोई काम खोज निकाले और यदि दैव सहायक हुआ तो नन्दा के आगे यह प्रमाणित कर सकेगा कि वह कोई नितान्त निकम्मा और आलसी नहीं है और किसी घोर से घोर संकट के आ पड़ने पर भी दोनों के जीने-खाने का कोई उपचार कर सकता है। यह सोचते ही वह इस तरह पलंग से उठ वैठा जैसे किसी विच्छू ने काट लिया हो। फिर तत्काल कमरा वन्द करके वाहर निकल पड़ा और नीचे उतरते ही उस हड़वड़ी में भी इस वात का विश्लेषण करने में नहीं चूका कि उसने कमरा वन्द क्यों किया ? किस पर शक करके ? नन्दा पर या भूतनाथ पर ? उसके कमरे में अव रखा ही क्या है जिसकी रखवाली करने के उद्देश्य से वहाँ अपने ही व्यक्तियों पर इतना शक करने लगा ? सोचकर वह एक वार अपने-ही-आप दिल खोलकर मुसकराया।

"मैं जा रहा हूँ, नीचे आकर किवाड़ वन्द कर देना।" वह सीढ़ी पर से ऊपर को मुँह करके वोला। और फिर वड़ी लापरवाही के साथ किवाड़ खोलकर वड़ी तेजी के साथ वाहर निकल पड़ा। भूतनाथ को साथ ले चलने की वात वह भूल ही गया।



वड़ी सड़क पर पाँव रखते ही उसने सोचा: "अव कहाँ जाया जाय ?

संकट से कैसे उसका बेड़ा पार होगा ? और फिर उसे एक पराक्रम करने की प्रेरणा हुई। उसने निश्चय किया कि उस निपट असहाय अवस्था में परदेश में प्राण त्यागने की अपेक्षा यही बेहतर होगा कि वह तत्काल उठ कर कहीं कोई काम खोज निकाले और यदि दैव सहायक हुआ तो नन्दा के आगे यह प्रमाणित कर सकेगा कि वह कोई नितान्त निकम्मा और आलसी नहीं है और किसी घोर से घोर संकट के आ पड़ने पर भी दोनों के जीने-खाने का कोई उपचार कर सकता है। यह सोचते ही वह इस तरह पलंग से उठ बैठा जैसे किसी विच्छू ने काट लिया हो। फिर तत्काल कमरा बन्द करके बाहर निकल पड़ा और नीचे उतरते ही उस हड़बड़ी में भी इस बात का विश्लेषण करने में नहीं चूका कि उसने कमरा बन्द क्यों किया ? किस पर शक करके ? नन्दा पर या भूतनाथ पर ? उसके कमरे में अब रखा ही क्या है जिसकी रखवाली करने के उद्देश्य से वहाँ अपने ही व्यक्तियों पर इतना शक करने लगा ? सोचकर वह एक बार अपने-ही-आप दिल खोलकर मुसकराया।

"मैं जा रहा हूँ, नीचे आकर किवाड़ बन्द कर देना।" वह सीढ़ी पर से ऊपर को मुँह करके बोला। और फिर बड़ी लापरवाही के साथ किवाड़ खोलकर बड़ी तेजी के साथ बाहर निकल पड़ा। भूतनाथ को साथ ले चलने की बात वह भूल ही गया।



बड़ी सड़क पर पाँव रखते ही उसने सोचा : "अब कहाँ जाया जाय ?

कहा।

'वाबू साहव' भी तुरन्त आ पहुँचे।

"स्टाफ में कोई जगह खाली है?"

"जी हाँ, एक जगह सव-एडीटर की कल ही खाली हुई है।"

"अच्छा! जाओ।" मैनेजर ने कर्मचारी की ओर देखते हुए कहा।

उसके चले जाने पर उसने राकेश की ओर देखते हुए और उसकी ओर लिखित कागजों का एक पैड वढ़ा दिया। फिर वोला: "देखिए, हम यह जानना चाहेंगे कि आप समाचार लिखकर तैयार करने या सजाने में किस हद तक योग्यता रखते हैं। इस शहर के मौसम का थोड़ा-वहुत अनुभव तो आपको हासिल हो ही चुका होगा। कृपया उसी के बारे में एक रिपोर्ट लिखकर तैयार करके मुझे दीजिए।"

और राकेश एक शव्द भी विना वोले कोरे कागज के पैड के ऊपर लिखने लगा। कमीज की ऊपरी जेव से कलम निकालकर ज्यों ही वह पहला शव्द लिखने लगा, यह देखकर धक् से रह गया कि कलम से एक बूंद भी स्याही नहीं निकली। वार-वार कोशिश करने पर भी जव स्याही नहीं निकली तव मैनेजर ने उसकी दुर्दशा देखकर अपनी कलम उसकी ओर वढ़ा दी।

राकेश काँपते हुए हाथों से लिखने लगा। जव पन्द्रह या वीस मिनट वाद उसने दो-चार सतरें लिख डालीं तव नीचे समाप्ति की सूचक लम्वी लाइन उसने खींच डाली। नीचे अपना नाम भी लिखने जा रहा था, पर मैनेजर ने टोकते हुए कहा: "नाम लिखने कोई ज़रूरत नहीं है। लाइए, कागज मुझे दीजिए।"

मैनेजर वड़े गौर से लिखा पढ़ने लगा। फिर तनिक खाँसते हुए वोला: "देखिए, महाशयजी, क्षमा कीजिएगा। लगता है, अभी अँग्रेजी लिखने का अभ्यास आपका ठीक से वन नहीं पाया है। मुझे वहुत दुःख है कि अपने स्टाफ में मैं आपको ले नहीं पाऊँगा। धन्यवाद!" कहकर उसने राकेश की ओर विदा करने की मुद्रा में देखा। राकेश तत्काल उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़कर विदा हुआ। वाहर की लू की लपटें अव उसके अन्दर

एक नये ही रंग में धधक रही थीं।

रिक्शावाला इन्तजार में खड़ा था। राकेश उस पर लड़खड़ाते पाँवों से बैठ गया। शहर में प्रकाशित होनेवाले एकमात्र हिन्दी दैनिक के कार्यालय चलने का आदेश देते हुए राकेश का जी चाह रहा था कि उसी क्षण रिक्शा से कूदकर कहीं भाग खड़ा हो।

फिर कुछ सोचकर आराम से बैठ गया। रिक्शा चलने लगा। राकेश को लग रहा था जैसे उसे फाँसी के तख्ते पर चढ़ाने के लिए जल्लाद बरबस लिये जा रहा हो।

अन्त में रिक्शा हिन्दी दैनिक के कार्यालय तक पहुँच ही तो गया। ओखली में जब सिर डाल दिया तब मूसल से डरना महामूर्खता है, यह सोचकर राकेश मैनेजर महाशय के कमरे का पता लगाकर, 'क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ?' बाहर ही से यह प्रश्न करके, सकारात्मक उत्तर पाते ही काँपते पगों से भीतर जाकर खड़ा हो गया। मैनेजर महोदय शिष्टता और सभ्यता की साक्षात् मूर्ति लगे। राकेश का साहस बढ़ा और पाँवों का डगमगाना तत्काल बन्द हो गया।

"कहिए कैसे कष्ट किया आपने," परम प्रेमपूर्वक मुसकराते हुए मैनेजर महोदय ने पूछा।

"आपके पास एक रुपया फुटकर होगा?"

"हाँ, है तो!" अत्यन्त चकित और विस्मित भाव से मैनेजर महोदय ने पूछा।

"बाहर रिक्शावाला खड़ा है। उसे अभी तक मैंने किराये का पैसा नहीं दिया है। वह जल्दी मचाये हुए है। मेरी जेब में एक पैसा भी नहीं है। इसीलिए आपसे माँगने की धृष्टता कर रहा हूँ। क्षमा कीजिएगा। बड़ी कृपा होगी, यदि आप मेरा यह तात्कालिक संकट टालने में मेरी सहायता करेंगे।" राकेश को स्वयं आश्चर्य हो रहा था कि उसने आते ही मैनेजर महोदय के आगे इस तरह की स्पष्टोक्ति करने का साहस ही कैसे किया। शायद उसके मुख पर छायी हुई सज्जनता की सुस्पष्ट छाया देखकर वह इस कदर ढिठाई बटोर पाया था।

मैनेजर महोदय ने तुरन्त जेब से एक रुपया निकालकर उसके आगे

बढ़ा दिया ।

राकेश तत्काल नीचे चला गया और रिक्शावाले के हवाले वह रुपया करके चैन की साँस लेता हुआ फिर ऊपर चढ़ गया । जब लौटकर मैनेजर महोदय के निकट पहुँचा तब उन्होंने उससे बैठने को कहा । वह बैठ गया ।

"कहिए, आज आपने इस ओर आने का कष्ट कैसे किया ?"

"बात यह है कि—" राकेश सहज स्वर में बोला, "मैं एक परदेसी हूँ । बेकार हूँ । इस आशा से इलाहाबाद आया था कि कहीं किसी पत्र में काम मिल जाये तो कुछ दिन निश्चिन्त जी सकूँ ।"

"आपने इससे पहले किसी दैनिक पत्र में काम किया है ?"

"जी नहीं, अभी तक यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सका । वैसे मैं एक कवि हूँ और दो-एक पुस्तकों का 'ऑथर' भी ।"

"किस विषय पर कौन-सी पुस्तकें आपने लिखी हैं ।"

"कविताओं के संग्रह के अलावा कवि से आप और क्या आशा कर सकते हैं । मेरा नाम शायद आपने कभी सुना या पढ़ा होगा । मुझे ब्रज-मोहन 'राकेश' कहते हैं । रेडियो में भी मेरी कुछ कविताएँ ब्राडकास्ट हो चुकी हैं ।"

"किन्तु क्षमा कीजिएगा । फिलहाल किसी कवि की आवश्यकता हमारे यहाँ नहीं है ।"

"मैं विभिन्न राजनीतिक विषयों पर लेख लिख सकता हूँ और प्रूफ देखने का अभ्यास भी मुझे है ।"

"हाँ, एक अच्छे प्रूफरीडर की आवश्यकता हमें अवश्य है ।" कहकर व्यवस्थापकजी ने मेज पर पड़ी हुई एक घण्टी पर तनिक जोर से हाथ मारा और दूसरे ही क्षण बाहर खड़ा एक पियन भीतर पहुँच गया ।

"दो-एक ताजा निकाले गये प्रूफ-शीट्स ले आओ !" व्यवस्थापकजी ने पियन को आदेश देते हुए कहा । वह तत्काल चला गया ।

"अच्छा, तो आप राकेश हैं ? बड़ी ही प्रसन्नता हुई आप से मिल-कर । आप रहनेवाले कहाँ के हैं ?" व्यवस्थापकजी ने समय काटने और राकेश को टटोलने के उद्देश्य से पूछा ।

"मेरा जन्म-स्थान ब्रज-प्रदेश में है । मैं वहीं से आ रहा हूँ ।" राकेश

ने अत्यन्त प्रसन्न और विनम्र भाव से उत्तर दिया।

"—जी—जी, बड़ी प्रसन्नता हुई आप से मिलकर।" व्यवस्थापकजी बोले। "कोई अच्छा कवि बेकारी की हालत में इधर-उधर भटकता हुआ मारा-मारा फिरे, यह हमारे ही देश में सम्भव है।"

"जी हाँ, जी हाँ," खीसें निपोरता हुआ राकेश बोला, "पर जीवन को यथार्थ कठोरता की परिस्थितियों के साथ 'एडजस्ट' तो कवियों को करना ही चाहिए।"

"ठीक-ठीक।"

इसी तरह दोनों के बीच कुछ समय तक समय-काट बातें हो ही रही थीं कि पियन दो लम्बे और गीले-गीले से छपे हुए कागज लेकर आ पहुंचा और उसने उन कागजों को मेज पर रख दिया।

व्यवस्थापकजी ने एक कागज उठाकर राकेश की ओर बढ़ाते हुए कहा: "यह लीजिए राकेशजी, तनिक इस शीट का प्रूफ देखने का कष्ट करें, मैं आता हूँ," कहकर व्यवस्थापकजी किसी काम के बहाने कमरे से बाहर चले गये।

जब लौटे तब तक राकेश प्रूफ देख चुका का। कागज पर एक सरसरी निगाह डालकर व्यवस्थापकजी बोले: "इस बीच आप पूरे कागज का प्रूफ देख चुके। बहुत तेज देखते हैं आप। सचमुच अभ्यस्त लगते हैं। पर माफ कीजिएगा, दो-चार गलतियाँ ऊपर की चार पंक्तियाँ देखते ही साफ नजर आ रही हैं मुझे।"

व्यवस्थापकजी की पहली बात सुनकर राकेश का हृदय बल्लियों ऊपर उछलने लगा था कि व्यवस्थापकजी पर अपनी तेज चाल से उसने अच्छा रंग जमा लिया, पर उनका दूसरा वाक्य सुनते ही फिर उसका दिल बुरी तरह बैठ गया।

व्यवस्थापकजी इत्मीनान से अपनी 'सीट' पर बैठकर बारीकी से राकेश का पढ़ा प्रूफ देखने लगे। वह देखते जाते थे और लाल स्याही-से जगह-जगह निशान लगाते जाते थे। एक-एक पंक्ति में आठ-दस जगह उनके निशान तेज छुरे की पैनी नोंक की तरह राकेश के कलेजे पर घाव करते जाते थे।

जब व्यवस्थापकजी पूरा कागज देख चुके तब राकेश ने दूर ही से देखा कि सारा कागज लाल स्याही से रँग उठा है। व्यवस्थापकजी ने कहा : "क्षमा कीजिएगा, प्रूफ पढ़ने में बड़ी जल्दबाजी से काम लिया गया है।"

"आप ठीक फर्माते हैं," राकेश बड़ी विनम्रता से बोला, "अपनी घबराहट की मनःस्थिति में मैं कई भद्दी गलतियाँ छोड़ गया, पर विश्वास मानिए, मैं साधारणतः इससे अच्छा प्रूफ देखता हूँ।" कहकर वह शून्य दृष्टि से ऊपर छत की ओर देखने लगा।

व्यवस्थापकजी ने देखा, निराशा की मनःस्थिति में राकेश की आँखों में घनघोर अन्धकार भाँय-भाँय कर रहा था। व्यवस्थापकजी के चेहरे पर घनघोर करुणा छा गयी।

"आप मेरे आगे तनिक भी न घबरायें, राकेशजी, लीजिए, आप स्थिर मन से इस अधूरे कागज का भी प्रूफ देख लीजिए! मेरे मन में यह विश्वास जाग रहा है कि आप साधारण मनःस्थिति में निश्चय ही बहुत अच्छा प्रूफ देख लेते होंगे। लीजिए, देखिए!" कहकर व्यवस्थापकजी ने दूसरा शीट भी उसकी ओर बढ़ा दिया।

अब की राकेश पहले से कई गुना अधिक घबराया हुआ था, फलतः इस बार प्रूफ देखते हुए वह कई भद्दी-से-भद्दी भूलों का संशोधन करना भूल गया। जब राकेश पूरा पेज देख चुका तब मैनेजर साहब ने फिर एक बार बारीकी से देखना शुरू किया। कई स्थानों पर पूरी पंक्तियाँ ही काटकर उन्हें नये सिरे से लिखना पड़ा।

"देखिए राकेशजी, वास्तविकता क्या है, आप जानते हैं?"

"जी नहीं," बड़े भोले ढंग से राकेश ने उत्तर दिया।

"बात साफ यह है कि आप हैं कवि और यह सख्त काम किसी भी कवि के अनुकूल नहीं बैठता।"

"ठीक है, तब मैं चलूँ?" कहता हुआ राकेश अचानक उठ खड़ा हुआ।

"अभी इस कदर जल्दी न दिखाइए। दो-एक हफ्ते बाद अपना अभ्यास बढ़ाकर फिर एक बार मुझसे मिलने का कष्ट कीजिएगा। मुझे

विश्वास है कि मैं तब आपके योग्य कोई-ना-कोई काम आपको दे सकूँगा।" अत्यन्त शिष्ट और शान्त भाव से व्यवस्थापकजी ने कहा।

"बहुत धन्यवाद ! मैं अवश्य आप से फिर मिलूँगा।" कहकर राकेश हाथ जोड़कर अविश्वसनीय धीरे पगों से बाहर की ओर बढ़ा। दरवाजे तक पहुँचा ही होगा कि पीछे से आवाज आयी। वह लौट पड़ा।

"आपने मुझसे कुछ कहा ?" राकेश ने पूछा।

"मैं केवल इतना ही कहना चाहता था कि जो रुपया आज आप ने मुझसे लिया है, उसे लौटाने की तनिक भी जल्दी न करें। फुरसत से ही बाद में कभी लौटा दीजिएगा—यदि लौटाना ही उचित समझें तो"' वरना लौटाने की कोई आवश्यकता नहीं है। अच्छा, नमस्कार !"

सीढ़ी से उतरते समय उसके पाँव इस कदर लड़खड़ा रहे थे कि एक सीढ़ी पर वह फिसलते-फिसलते रह गया और फिर धीरे-धीरे बड़ी साव-धानी से चलने लगा। नीचे की सुरक्षित जमीन पर पाँव पड़ते ही वह सोचने लगा कि जिस तीखी समस्या के समाधान के उद्देश्य से बड़ी चालाकी के साथ व्यवस्थापक जी से एक रुपया कर्जा माँगने की जलालत सही थी, वह समस्या अभी तक वैसी की वैसी ही बनी हुई थी। डेरे पर पहुँचने पर उसे नन्दा से रिक्शा के पैसे माँगने पर पहले से भी विकट चुभन-भरा अपमान सहन करना पड़ेगा। वह इस तरह सोच ही रहा था कि उसने देखा, रिक्शावाला अभी तक रुका हुआ था।

"चलो !" राकेश ने अनुरोध के-से स्वर में रिक्शेवाले से कहा। राकेश ने उसे मंजिल बताकर भाड़ा तय कर लिया और फड़कते हुए कलेजे से रिक्शा पर बैठ गया। जब रिक्शा चलने लगा तब उसका मन आत्म-ग्लानि से गले-गले तक भर चुका था। रिक्शावाला जब उसे मंजिल की ओर लिये जा रहा था तब उसे लग रहा था जैसे कोई बलपूर्वक उसकी लाश घसीटे लिये जा रहा हो।



रिक्शा पर वैठे-वैठे वह सोच रहा था कि अव क्या होगा ? अव उसका भविष्य क्या है और कितना शेष रह गया है ? उस शेष भविष्य को भी संगम के पवित्र जल में डुवो देने के सिवा अव उसके पास क्या रह गया है ? गंगा और यमुना के मिलन की इस पुण्य-स्थली में पहुँचते ही उसे निश्चय ही भव-सागर के अशेष नारकीय बन्धनों से मुक्ति मिल जायेगी। क्योंकि अव इस मुक्ति के विना उसे पल-पल की अपार यातनाओं से छुट्टी पाने के लिए दूसरा रास्ता ही क्या रह गया है ? एक बार उसकी इच्छा हुई कि रिक्शा को सीधे संगम की ही ओर हँकवा ले चले, पर यह सोचकर रुक गया कि रिक्शा का भाड़ा चुकाने के लिए उसके पास पैसे ही कहाँ हैं। और डूव मरने से पहले किसी का कर्ज अपने सिर पर लादे ले चलना हर दृष्टि से अनुचित होगा। व्रजवासी होने के कारण उसके मन में पाप-पुण्य के छोटे-मोटे संस्कार जन्म से ही जड़ जमाये हुए थे। इसलिए वह मन मारकर मौन साधे रहा और सीधे डेरे पर पहुँचकर ही उसने दम लिया। रिक्शेवाले को वाहर ही खड़ा करके वह सीधे भीतर गया और नन्दा को एकान्त में वुलाकर उसने वारह आने पैसे उससे माँगे। नन्दा से विना कुछ कहे ही वह वाहर निकला था, इस कारण नन्दा तरह-तरह की बुरी भावनाओं में मग्न होकर वहुत ही चिन्तित हो उठी थी। राकेश के लौटने पर उसकी जान में जान आयी और उसने केवल एक छोटा-सा प्रश्न किया :

"कहाँ चले गये थे विना कुछ वताये ? सामान तो कुछ लाये नहीं, देखती हूँ।"

"कहीं तिनके का सहारा खोजने गया था, पर वह भी न मिला। घोर विपत्ति में तिनका भी सहारा देना नहीं चाहता।" राकेश ने कहा।

"अच्छा, फिर फुरसत से तुमसे विस्तार से सारी बातें पूछूँगी। अभी तो तात्कालिक समस्याएँ घेरे हुए है।

"क्या कोई नयी समस्या आ पड़ी है ?" अत्यन्त चिन्तित भाव से राकेश ने पूछा।

"रुपये-पैसे की तंगी आती ही रहेगी, इतना मैं पहले ही जानती थी। और तुम भी निश्चय ही जानते रहे होगे। पर इतनी जल्दी यह बला सिर पर सहसा गाज की तरह टूट पड़ेगी, इतना मैंने नहीं सोचा था।" नन्दा बोलती हुई कुछ सकपका-सी रही थी।

"इस समय हम लोगों का केवल इतना ही कर्त्तव्य है नन्दा, कि इस तात्कालिक संकट की स्थिति में अपनी नैया को किसी तरह पार लगाना है। आज रात के लिए स्थिति ठीक है न ?"

"हाँ, आज का दिन जिस तरह कट गया है, रात भी उसी तरह जैसे-तैसे कट ही जायेगी। पर हर दिन और हर रात की समस्या के हल के प्रयत्न में तो प्राण ही तिल-तिल करके निकले चले जा रहे हैं। कुछ-न-कुछ हल तो निकालना ही होगा, इस तात्कालिक समस्या का। हे भगवान् किसी तरह इस समय बेड़ा पार लगाओ, भविष्य की देखी जायगी। ऐसी तंगी में तो अपनी लाज ही बचाना कठिन हो रहा है। इस कदर अर्थाभाव का संकट अचानक सिर पर आ पड़ेगा, इसकी तो कोई कल्पना ही नहीं थी। भगवान् लाज बचाओ ? तुम तो छप्पर फाड़कर विपत्ति के मारे-हुओं के घर सोना बरसा देते हो, ऐसा सुनती आयी हूँ बचपन से। तब अब किस समय के लिए अपनी दया को मुट्ठी में छिपाये निश्चिन्त बैठे हो, ठाकुर ?"

बगलवाले कमरे में कुछ खटकने की-सी आवाज हुई। नन्दा ने दरवाजा खोला तो देखा, भूतनाथ फोनवाले कमरे की ओर तेज पगों से चुपचाप खिसका जा रहा है।

राकेश को घर का वातावरण जैसे काटे खा रहा था। उसने कहा: "मैं एक चक्कर और टहल आता हूँ। तुम मुझे प्रसन्न मन से इसकी अनु-

मति दे दो।"

"अच्छा, तुम्हारा जी दुःखी है, तो मन वहला आओ! लो, ये दस रुपये लेते जाओ, कहीं चाय-कॉफी पी लेना जी भरकर। मैं तब तक कोई पुस्तक पढ़कर जी वहला लूँगी।" कहते हुए उसने आँचल में वँधे दस रुपये का एक वहुत पुराना नोट निकालकर राकेश की ओर वढ़ा दिया। राकेश को उस वहुत ही मैले नोट को उसके हाथ से लेते हुए इस कदर प्रसन्नता हुई, जैसे उसे कारूँ का खजाना मिल गया हो। नोट को जेव में अच्छी तरह सँभालकर, चप्पल पहनकर वह तत्काल खुटर-खुटर करके वाहर निकल पड़ा। नन्दा ने उसके पीछे-पीछे नीचे जाकर भीतर से जंजीर वन्द कर दी और फिर ऊपर चली आयी। अपने कमरे के एकान्त में ताक से उठाकर एक उपेक्षित-सी पुस्तक लेकर पढ़ने लगी। उस फटी-सी पुस्तक को वह इससे पहले सैकड़ों वार पढ़ चुकी होगी, पर वह उसे कभी पुरानी नहीं लगी। हर वार पढ़ने पर एकदम नयी लगती थी। कथा-सरित्सागर के हिन्दी अनुवाद की उस कच्ची जिल्दवाली पुस्तक के प्रायः सभी पन्ने तागा टूटने पर खुल चुके थे। हर वार नन्दा को उसका एक-एक पन्ना तरतीव से जोड़कर लगाना होता था। उसकी कहानियों में कल्पना की उड़ान को जो पूरी छूट दी गयी थी वह नन्दा के मन को वड़ा ही ढाढ़स वँधाती थी। अपने वुरी तरह भटके हुए मन को वे कथाएँ निराली और चिर-परिचित-सी लगने पर भी, फिर प्रत्यक्ष की अजनवी दुनिया में मन को कसकर वाँधने का प्रयत्न करती हुई वह जैसे कहीं एक-दम खो गयी। कहाँ, किस विचित्र स्वप्नलोक में खोयी रही, यह वह स्वयं जान नहीं पायी। अचानक दूर से रेल की धीमी-धीमी गड़गड़ाहट की आवाज उसके विकेन्द्रित कानों में जैसे तवला वजाने लगी। पुरानी कहानियों में अव मन लग ही नहीं पाता था।

गाड़ी ज्यों-ज्यों आगे वढ़ती गयी, त्यों-त्यों उसे लगने लगा कि कृष्ण लम्वे विछोह के वाद गाड़ी में वैठकर राधा से मिलने कुरुक्षेत्र की ओर वढ़े चले आ रहे हैं, और यह कल्पना उसे इस कदर सुखद और सान्त्वना-प्रदायक लगी कि कुछ ही समय पहले तक की घोर काली निराशा का अन्धकार उसके मन पर से कुहरे की तरह परत-दर-परत छँटने लगा।

एक नयी किन्तु अस्पष्ट आशा का संसार उसकी आँखों के आगे तैरने लगा।

गाड़ी अब उत्तर की ओर वाले बाँध के ऊपर फटर-फट्ट, फटर-फट्ट का शब्द करती हुई जैसे एकदम निकट उसके सामने आ खड़ी होने की तैयारी कर रही थी। मन्द-मन्द चलती हुई गाड़ी की प्रत्येक गतिविधि पर नन्दा अपने कमरे की खिड़की पर गौर से कह रही थी—अपनी आधी टूटी कुरसी पर बैठे-बैठे। और इस तरह झाँकना उसे बहुत ही सुखद लग रहा था, जैसे जीवन के जिस आनन्दलोक की खोज उसे इतने वर्षों से थी, सामनेवाली वह गाड़ी धीमी चाल से उसी दुनिया की ओर बढ़ रही हो। यदि किसी जादू की माया से वह एक कूद में खिड़की के रास्ते उस गाड़ी पर बैठ सके तो एक ही सेकेण्ड में मन की प्रतिपल की हजारों दुश्चिन्ताएँ हवा में उड़कर कपूर की तरह विलीन हो जायेंगी और वह आनन्द-लोक की यात्रा उन सैकड़ों, हजारों यात्रियों के साथ बड़े आराम से कर सकेगी जो उसके वर्तमान संकटमय जीवन के सुख-दुःख के सच्चे साथी हैं—इस तरह सोचती हुई वह अनन्त के एक अस्पष्ट और अनिश्चित बिंदु से दूसरे बिंदु में जाकर खो गयी थी, उसका बोझ आत्म-विस्मृत मनःस्थिति में रंचमात्र भी उसे नहीं हो रहा था। सहसा बाहर से किसी ने दरवाजा खटखटाया। निश्चय ही स्वर्गदूत आ पहुँचा है, वह स्वप्न से सजग होकर सचेत भाव से सोचने लगी थी। उठकर उसने दरवाजा खोला और सामने सचमुच के भूत की तरह भूतनाथ खड़ा था। उसके दायें हाथ में सादे कागज में लपेटा हुआ एक तनिक मोटा-सा पैकेट था। बिना शब्द बोले वह सीधे कमरे के भीतर चला आया और उसने बड़ी लापरवाही के साथ हाथ का पैकेट नन्दा के पलंग पर गिरा दिया। फिर बोला, "बहू, मुझे विश्वास है कि आप लोगों का वर्तमान संकट इस पैकेट की सहायता से निश्चित ही टल जायेगा। बाकी बाद में देखी जायेगी। तनिक इसे खोलकर देख लो और फिर अच्छी तरह सँभाल लेना।"

नन्दा केवल एक साधारण कुतूहल की प्रेरणा से पैकेट का दुहरा डोरा तोड़ने का प्रयत्न करने लगी। पर डोरा काफी मजबूत निकला। उसकी

कोमल उँगलियों में खाँचे पड़ गये, पर डोरा नहीं टूटा।

"लाइए, मैं ही डोरा तोड़कर पैकेट खोल दूँ," कहकर भूतनाथ ने पूरा पैकेट हाथ में ले लिया और एक सेकेण्ड के अन्दर पैकेट खोलकर, बाहर लपेटा हुआ सादा कागज निकालकर, नीचे जमीन पर अत्यन्त उपेक्षा के साथ पटक दिया।

नन्दा के आश्चर्य का अन्त न रहा जब उसने देखा कि कागज के भीतर दस-दस रुपयों के नोटों की एक चार इंच मोटी गड्डी बँधी थी।

"हाय भगवान्, इतने सारे रुपयों को लेकर मैं क्या करूँगी!"

"इससे तुम सब-कुछ कर सकती हो। इन नोटों के प्रति इस कदर उपेक्षा का भाव न दिखाओ, बहू! स्वयं भगवान् भी इसके प्रति उपेक्षा नहीं दिखा पाते! इन्हें सम्भालकर रखो। इतने से राकेश तो फिलहाल जी ही जायगा और तुम भी जीवन को एक नये दृष्टिकोण से देखना शुरू कर दोगी।" भूतनाथ धीरे से अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में बोला। स्पष्ट ही वह इस बीच नन्दा और राकेश की बातें अपने कमरे से सुन चुका था और कथा-सरित् के ही एक पात्र की भूमिका निभाने आया था।

"पर आपको इतने सारे रुपये कहाँ से मिल गये? और ये हैं कितने?" नन्दा ने जैसे शिकायत-भरे स्वर में कहा।

"बहू, हम सब का कल्याण इसी में है कि इस सम्बन्ध में तुम अब एक भी प्रश्न न करो। चुपचाप इन्हें कहीं छिपाकर रख लो।"

"पर इन्हें बिना गिने मैं हर्गिज नहीं लूँगी!" नन्दा जैसे अपने-आप से ही बड़बड़ाती हुई बोली।

"मेरा इतना-सा अनुरोध मान जाओ बहू, कि कम-से-कम इस समय तो तुम इन्हें गिनो ही नहीं। वरना मेरा सारा बना-बनाया खेल या नाटक एकदम चौपट हो जायेगा।"

"अच्छा, अच्छा, मेहरबानी करके आप इस समय चुपचाप बाहर चले जाइए। मैं फिर चाहे अकेले में कुछ भी करूँ।"



भूतनाथ तुरन्त वाहर निकल आया। नन्दा ने भीतर से किवाड़ वन्द किया और फिर फर्श पर साफ-सा कपड़ा विछाकर नोटों की गड्डी का डोरा कैंची से काटकर एक-एक करके नोट गिनने लगी। वह एक-एक करके नोटो को नीचे कपड़े पर गिराती जाती थी और गिनती जाती थी। कभी-कभी एक के वदले दो नोट, एक-दूसरे से थोड़ा-सा चिपके हुए निकल आते थे। और तव नन्दा खीझ उठती। जो भी हो, जैसे-तैसे उसने पूरी गड्डी गिन ही डाली। और फिर विखरे हुए नोटों को वटोरकर फिर से गड्डी के रूप में उन्हें वाँधा और फिर पूरी-की-पूरी गड्डी पलँग के गद्दे के नीचे दवा दी। उसने हिसाव लगाया कि पूरे एक हजार रुपये होंगे वे। इतने रुपये भूतनाथ के पास कहाँ से आये, इतना कुतूहल नन्दा के मन में जगना एकदम स्वाभाविक था। पर यह भोला और भला आदमी इस सम्वन्ध में कोई वात ही न करने का आदेश दे गया है! वड़ा ही भोला और भला भूत है वह!—नन्दा इसी तरह सोच ही रही थी कि फिर वाहर से किसी ने दरवाजा खटखटाया। डरते-डरते नन्दा ने दरवाजा खोला तो फिर उसी रहस्यमय प्राणी—या भूत—को वाहर खड़े देखा। पर उसे देखकर इस शाम के धुँधलके में भी डर क्यों नहीं लगता। जवकि वचपन से ही किसी भूत की कल्पना-मात्र से वह वुरी तरह घवरा उठती थी। नन्दा सोच रही थी। भूतनाथ ने जव विना आज्ञा लिये ही चुपचाप भीतर प्रवेश किया, तव इस वार अकारण ही उसका हृदय वुरी तरह से धड़कने लगा। उसने साहस वटोरकर वड़ी ढिठाई-भरे स्वर में सहज ही उससे कहा: "अच्छा

जेठ जी, क्षमा कीजिएगा। एक प्रश्न का उत्तर पाये विना मुझे तनिक भी चैन नहीं मिल रहा है।"

"कहो क्या पूछना चाहती हो तुम? बेझिझक पूछो।" भूतनाथ ने अपने स्वर में कुछ समझ में न आनेवाला स्नेह और वैसी ही कोमल करुणा घोलकर कहा।

"देखिए जेठजी, एक बात पूछती हूँ। मेरे प्रश्न पर न तो हँसिएगा और न उसका कोई दूसरा अर्थ लगाइएगा। कृपया इतना बताने का कष्ट तो करें कि आप वास्तव में भूत हैं या जीवित मनुष्य? मेरे मूर्खता-भरे मन में अभी तक इस सम्बन्ध में सन्देह भी भरा है और शंका भी!"

"बहू, मैं इस बात से बेहद दुःखी हूँ कि इतनी घनिष्ट बातों के बावजूद अभी तुम मेरे सम्बन्ध में बुरी तरह शंकित हो। मैं अपने अस्तित्व की कसम खाकर तुमसे सच कहता हूँ कि मैं भूत नहीं, एक सीधा-सादा मनुष्य हूँ—जीवित मनुष्य। तुम्हारे स्वभाव की निपट सरलता और तुम्हारी वाणी के माधुर्य से इस कदर प्रभावित हो उठा हूँ कि एक मिनट भी तुम्हारे नैकटच से विछुड़ने पर मुझे अपने अस्तित्व पर ही सन्देह होने लगता है और मैं अपने को अनन्त शून्य में निरुद्देश्य भटकता और बिखरता हुआ पाता हूँ। मुझे क्षमा करना, इतने स्पष्ट रूप से अपनी बात कहने पर भी मुझे लगता है कि अभी अपनी बात का हजारवाँ अंश भी स्पष्ट नहीं कर पाया हूँ। मैं क्या करूँ! मुझे इस अस्पष्टता बोध से बचाओ। मेरी रक्षा करो, बहू, तुम मेरी माता, मेरे अस्तित्व-बोध की सर्व-रक्षामयी देवी हो! तुम्हारी क्षमा, करुणा और ममता के बिना मैं शून्य हूँ, अस्तित्वहीन और सत्ता-रहित हूँ। मेरी छाया की रक्षा करो माता! मुझे अनन्त शून्य में निरुद्देश्य और निरर्थक भटकने से बचाओ!"

और नन्दा अपने भीतर एक अर्थहीन भय की तीखी चुभन के बोध से असमय की हवा के झोंके से बरबस बुरी तरह नाचनेवाले पीपल के पत्ते की तरह थरथराने लगी। उसे लग रहा था कि अभी चक्कर खाकर गिर पड़ेगी! "मुझे बचाओ, मैं चक्कर खाकर अभी बरबस फर्श पर गिर

पड़ूँगी ! मेरा हाथ थामो, जेठजी !" नन्दा बुरी तरह घबरायी हुई आवाज में बोली। और उसने अनुभव किया कि दूसरे ही क्षण एक अत्यन्त कोमल किन्तु बर्फ से भी ठण्डे हाथ का स्पर्श उसके शरीर के गरम खून को बर्फ के पत्थर की तरह जमाने लगा था।

"मुझे अपने हाथों का गर्म स्पर्श दीजिए, वरना मैं अभी बर्फ की पुतली बन जाऊँगी।" नन्दा तनिक चीखकर बोली।

"हाय ! मैं वह गरम स्पर्श कहाँ से लाऊँ, जिसकी इस समय तुमको परम आवश्यकता है ! इसी एक कमी ने तो मेरे सारे जीवन को एकदम निरर्थक और निपट व्यर्थ बना दिया है। बहू, बहू, मेरी भोली और भली बहू, तुम्हें अपने ही मन की गरमी से मेरे छायात्मक अस्तित्व को ताप देना होगा। बहू, तुम्हारे शरीर और मन के कण-कण में प्राणों का अमिट ताप और अक्षय स्फूर्ति भरी है। मेरे प्राणों में उसका अनवरत संचार कर दो ! बहू, मैं तुम्हारे ही जीवन्त संसार में मन का मुक्तिहीन स्फुरण और तन का निर्द्वन्द्व उल्लास चाहता हूँ। अमिट कृपा करो माता, मुझे तुरन्त नव-जीवन-दान दो और अपने सजीव कम्पन-भरे संसार के बीच बरबस घसीटे लिये चलो ! संसार के संस्पर्श से रहित अछूत वर्ग का एक निरीह प्राणी हूँ, जिसे जन्म से ही मरा समझना चाहिए।"

और नन्दा उसी क्षण चक्कर खाकर अचेत अवस्था में धम्म से नीचे गिर पड़ी।

कितनी देर तक नन्दा चेतना खोये उसी अवस्था में फर्श पर पड़ी रही, इसका लेशमात्र बोध भी उसे नहीं था। उसने आँखें तब खोलीं जब अपने शरीर में ऊपर से नीचे तक एक तप्त स्पर्श के सुखद संचार से उसमें नया चैतन्य जगने लगा। जब सहसा वह सुखद स्पर्श गायब हो गया तब वह तुरन्त चिल्ला पड़ी : "नहीं, नहीं, उस संजीवन स्पर्श से मुझे एक पल के लिए भी वंचित न करो। लाओ, अपना हाथ मेरे हाथ में दो और मेरे शरीर और आत्मा में नया संजीवन-मन्त्र फूंकते रहो !" और यह कह कर उसने भूतनाथ की हथेली को अपने माथे पर रगड़ना शुरू कर दिया।

"वाह, ऐसी मीठी गरमी तुमने कहां पायी ?" नन्दा ने लेटे-ही-लेटे

गद्‌गद् स्वर में कहा।

"वाह, कैसा अपूर्व-सुखद अलौकिक स्पर्श है!" नन्दा कुछ क्षण मौन रहकर उसी अस्फुट गद्‌गद् स्वर में फिर बोल उठी। "तुम न भूत हो न मनुष्य, तुम साक्षात् व्रज-विहारी, भगवान् हो! बत्ती, जलाओ, बत्ती जलाओ!" वह सहसा एक अस्वाभाविक स्वर में चीख उठी! भगवान् भी क्या अपनी भक्तिन के घर में अँधेरे में ही प्रवेश करते हैं? उन्हें भी अँधेरा ही भाता है? जलाओ जल्दी बत्ती! बैठे क्या हो!"



और भूतनाथ ने तत्काल उठकर कमरे की दोनों बत्तियाँ जला दीं। क्षण में सारा भूतग्रस्त कमरा जैसे एक दिव्य प्रकाश से जगमगा उठा! नन्दा धीरे से उठी और अपने पलँग पर जाकर लेट गयी और मुँह ढाँपकर चुपचाप पड़ी रही और अस्पष्ट, अधूरे और अर्थहीन सपनों में खोयी रही।

कुछ ही देर बाद नीचे से खटखट की आवाज सुनाई दी। भूतनाथ ने नीचे जाकर दरवाजा खोल दिया। राकेश भीतर चला आया। ऊपर आते ही सीधे नन्दा के कमरे में गया और नन्दा के वदन में, सिर पर और कपाल में धीरे-धीरे सस्नेह हाथ फेरने लगा।

"क्या हाल है नन्दा, तबीयत तो ठीक है?" राकेश ने कोमल स्वर में पूछा।

"मुझे शाम को अकेली छोड़कर कहाँ चले गये थे? मैं बहुत घबरा

उठी थी।" बच्चों की तरह मचलते हुए स्वर में नन्दा ने कहा।

"अरे, भूतनाथ तो यहीं था! तब घबराहट किस बात की थी? इस बीच मैं दो-एक आदमियों से मिल आया। मेरा एक पुराना मित्र, जो आजकल बनारस में है, कॉफी हाउस में मिल गया था। उससे बहुत-सी बातें हुईं। उसका कहना है कि बनारस में मुझे कहीं-न-कहीं अवश्य काम मिल जायगा। वहाँ कई प्रकाशकों से उसकी पहचान है। उसने बताया कि एक प्रकाशक रेडियो में मेरी कविताएँ सुनकर बहुत प्रभावित हुआ है और एक संग्रह छापने के लिए बहुत उत्सुक है। मैं अपने उसी मित्र के साथ परसों ही बनारस चलने की बात तय करके आया हूँ। पुस्तक छप जाने पर मेरी कविताओं का अच्छा प्रचार हो जायेगा और फिर कहीं-न-कहीं मुझे अच्छा काम मिल जायेगा। तब हम लोग वर्तमान आर्थिक संकट से मुक्त हो जायेंगे। चार-पाँच महीनों के अन्दर हम इतनी रकम तो जमा कर ही लेंगे जितने से विवाह-उत्सव मजे में मना सकेंगे। अब तुम सारी चिन्ता अपने मन से झाड़कर साफ कर लो। क्यों, ठीक है न? अब तो आश्वस्त हो जाओ रानी!"

"तुम क्या सचमुच परसों जाने का निश्चय कर चुके हो? मुझसे बिना पूछे ही तुमने इस बात का निश्चय क्यों कर लिया। मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी।"

"अब तुम इस शुभ कार्य में अड़चन खड़ी न करो, मेरी भली रानी! मैं बस तीन ही चार दिन में लौट आऊँगा। इतना-सा वियोग तुम्हें सहन करना ही होगा!"

"मुझे साथ ले चलने में तुम्हें क्या आपत्ति है? मथुरा से अपने साथ मुझे यहाँ तक लाने में जब तुम्हें कोई आपत्ति नहीं हुई और यहाँ आने पर मेरी वजह से तुम्हारे किसी काम में कोई अड़चन नहीं हुई तब तीन-चार दिन के लिए मुझे बनारस ले चलने में तुम्हें किस बाधा का भय हो रहा है?"

"मुझे कुछ खास ऐसी बाधा का भय तो नहीं हो रहा है। पर बात क्या है, नन्दा, जानती हो? मेरा यह मित्र बराबर ही कुछ आवारा किस्म का जीवन बिताता रहा है। उसके साथी भी कुछ अच्छे किस्म

के आदमी नहीं हैं। वह अभी तक अपनी कोई गिरस्ती भी नहीं जमा पाया है, अविवाहित है। रात-दिन उसके यहाँ उसी की तरह के आवारे जुटे रहते हैं। ऐसी हालत में तुम वहाँ कहाँ रहोगी और किस तरह? उलटे वे लोग सब समय हम दोनों का मजाक उड़ाते रहेंगे। मुझे यह सहन नहीं होगा। ऐसी हालत में तुम वहाँ रहना चाहती हो तो सोच लो।"

"खैर, यह तो जो होगा, सो होगा। अब तुम यह बताओ कि पुस्तक छप जाने पर भी तुम्हें क्या काम की तलाश रहेगी? तब क्या घर बैठे-बैठे तुम्हें रॉयल्टी का रुपया नहीं मिलता रहेगा?"

"अरी मेरी भोली रानी," अपने स्वर में अपार स्नेह घोलते हुए राकेश बोला, "कविता-पुस्तकें बिकती ही कितनी हैं? तुम्हें यह जानना चाहिए कि आज का कवि कालिदास की तरह कहीं किसी विक्रमादित्य का साहचर्य पाता है? जहाँ जाता है, वहाँ उसका मजाक ही उड़ाया जाता है और जो थोड़े से श्रोता या पाठक उसके प्रति आकर्षित होते हैं वे स्वयं कोपीनधारी या कनफटे बाबा होते हैं! कविताओं के समझदारों और कद्रदानों को रेगिस्तान के बालू में छिपी हुई चींटियों की तरह तलाशना होता है। आज मैं समझ रहा हूँ कि तुम्हारी यह बहुत बड़ी भूल थी कि तुमने एक कवि को जीवन-साथी चुना। अब सब-कुछ सहन करते हुए तुम्हें उसी की तरह दर-दर भटकना होगा और फ़ाक़ाकशी करनी होगी। तब कमर कसकर तैयार हो जाओ, जीवन-भर की निष्फल साधना के लिए!"

नन्दा सहसा एक झटके से पलँग पर उठ बैठी और लगी चुपचाप टपाटप आँसू बहाने। राकेश उसे बहुतेरा सान्त्वना देने की कोशिशें करता रहा, पर उसके आँसू थे कि धारा-प्रवाह बहते चले जाते थे, किसी भी तरह थमते ही नहीं थे। अन्त में राकेश हार मानकर चुपचाप बैठा आँखों के आकाश से अविराम बरसती रहनेवाली उस वर्षा का मूक दर्शक बनकर धीरज बटोरने के प्रयत्न में जुटा रहा।

"तब क्या हमें कभी इस अनिश्चित दशा से उबरने का कोई अवसर ही कभी नहीं मिलेगा! इस स्थिति से तो यही अच्छा होगा कि हम दोनों

साथ ही संगम में डूब मरें।

विश्वव्यापी जीवन को सोखनेवाली एक गहरी निराशा की उसाँस नन्दा के अन्तस्तल से वरवस वाहर निकल पड़ी। और उसके वाद ही वह पंख-कटे कबूतर की तरह वरवस पलँग पर गिरकर लेट गयी और अपने भीतर अपार संसार-सागर को पार करने का साहस उसी तरह वटोरने लगी जिस तरह लोक-कथा की एक छोटी-सी टिटिहरी एक महासमुद्र को पाटने के उद्देश्य से अपनी नन्हीं-सी चोंच में मिट्टी भर-भरकर समुद्र के पानी में डालते रहने के अनन्तकालीन प्रयास में जुट गयी थी।

काफी देर तक वह उसी तरह लेटे-लेटे एक विचित्र कल्पना-लोक में खो गयी, जहाँ चारों ओर से प्रलयकालीन वाढ़ आयी हुई थी, और वह कहीं धरती का एक ऐसा सुरक्षित टुकड़ा खोजने में जुटी हुई थी, जहाँ वह आराम से अपने दो पाँव पसार सके, पर कहीं भी धरती का ऐसा सुरक्षित टुकड़ा नहीं पा रही थी। जव काफी देर वाद उसका वह व्यर्थ स्वप्न-जाल टूटा तब लगा कि कैसा भयंकर दुःस्वप्न था। वह जिसमें उसे एक वेताल की ठठरी ने अपनी लम्वी-लम्वी हड्डीनुमा उँगलियों में धर दवोचा था! आँखें खुलने पर उसने खिड़की से देखा कि दिन ढल गया है और कभी समाप्त न होनेवाली काली सन्ध्या और अँधेरी रात उसकी चेतना पर पूरा कब्जा करने के लिए वड़ी तेज गति से चली आ रही थी। उसने वरवस अपने मस्तिष्क पर छाये हुए कल्पना-जाल को मकड़ी के जाले की तरह आसानी से छिन्न कर दिया और तत्क्षण के यथार्थ से जूझने के उद्देश्य से सहसा पलँग पर से उठ वैठी।



नीचे जाकर उसने रगड़-रगड़कर अपनी आँखें धोयी—ताकि भीतर और बाहर का धुँधलापन अच्छी तरह साफ हो जाये। जब देखा कि धुलाई अच्छी तरह हो चुकी और सब-कुछ स्पष्ट दिखने लगा और धुँधलेपन का लेश नहीं रह गया, तब वह रसोईघर में आग सुलगाने चली गयी। बहुत कोशिश करने पर भी कोयले जलते ही नहीं थे। उसने उन्हें जलाने के लिए कण्डों और लकड़ी की चैलियों की भी भरपूर सहायता ली। पर कोयले फिर भी नहीं जल पाते थे। मारे धुंए के उसकी आँखें कड़वाहट से भर गयीं और उनसे धाराप्रवाह पानी टपकने लगा। वह धुंए के बहाने जी भरकर रोयी। सहसा बाहर का दरवाजा किसी ने बड़े जोर से खटखटाया। नन्दा हड़बड़ी में उठी और उसी हड़बड़ी में वह अपनी आँखें पोंछना भी भूल गयी। उसने दरवाजा खोला। भूतनाथ ने भीतर प्रवेश करते ही उसकी आँखों पर अपनी पैनी दृष्टि जमायी और बड़ी घबराहट के साथ तत्काल बोल उठा: "अरे यह क्या! तुम तो रो रही हो। क्या बात हो गयी!"

नन्दा अपने स्वर को भरसक संयत करती हुई धीरे से बोली: "कुछ नहीं, कोयले सुलगा रही थी, आँखों में धुँआ भर गया।"

भूतनाथ सीधे रसोई की ओर बढ़ा और कुछ मुआयना करने लगा। फिर सहसा तनिक उचकता हुआ-सा बोल उठा: "कोयले कच्चे हैं, अधसूखे है और चैलियाँ गीली लकड़ी की हैं। आग सुलगेगी कैसे! कहाँ गया राकेश! निकम्मा और नालायक कहीं का! इतना-सा काम भी नहीं कर सकता कि बाजार से सूखा ईंधन खरीदकर लाये। बहू की

किसी भी परेशानी की ओर ध्यान नहीं दे पाता। और उसकी परेशानियों की गिनती नहीं हो सकती।" फिर सहसा अपनी आवाज को क्रोध के तार-सप्तक पर एकदम निखाई पर चढ़ाता हुआ पुकारने लगा: "रा-के-श, रा-आ-आ-आ-के-श, कै-ला-आ-स ! कहां हो ? क्या कर रहे हो ? जरा नीचे उतर आओ !"

"आप किस कैलाश को पुकार रहे हैं ? इस घर में कोई कैलास नहीं है।" नन्दा भरपूर मुस्कुराती हुई बोली।

"क्या कहती हो तुम ?" नन्दा की बात का कोई अर्थ न समझ पाने का भाव जानते हुए भूतनाथ ने कहा। फिर दूसरे ही क्षण अपनी स्मृति को जगाते हुए बोला: "अरे, कैलाश नहीं, राकेश ! मैं इस निकम्मे का नाम ही भूल जाता हूँ और हर बार चक्कर में पड़ जाता हूँ।" और फिर जीने से होकर ऊपर चढ़ते हुए "राकेश ! राकेश !" की आवाज लगाने लगा।

"अरे भूत दा ! क्यों इस कदर नाराज हो उठे हो ? क्या मुसीबत सिर पर आ गयी ?" ऊपर कहीं से राकेश बोला।

"अबे, देखता नहीं। तुम्हारी बहू की क्या दुर्दशा हो गयी है, कोयला सुलगाने में तुम उसकी मदद क्यों नहीं करते ? चलो, तुम्हें मैं सिखा देता हूँ आग जलाना !" और भूतनाथ राकेश का हाथ पकड़कर उसे जैसे नीचे को घसीटने लगा।

इस बीच राकेश अपनी निपट दयनीय स्थिति के दुःखस्वप्न से उबरने के लिए बुरी तरह छटपटा रहा था और घर के वातावरण से बोर होकर फिर बाहर खिसक जाना चाहता था—कॉफी हाउस की गरमागरम बहसों के बीच !

भूतनाथ की चीख-पुकार से रास्ते पर आ गया।

"अरे, यह क्या करते हो, भूत भैया, मैं गिर जाऊँगा !"

"तो चलो जल्दी।" कहकर भूतनाथ ने राकेश का हाथ छोड़ दिया। "कहीं फरार न हो जाना। तुम जेल के सिपाहियों की भी पकड़ में नहीं आ सकते ! ऐसे दुष्ट और चालाक हो तुम !"

राकेश बड़ी फुरती से नीचे नन्दा के पास जा पहुँचा। और उससे

पूछने लगा कि माजरा क्या है ? भूतनाथ अभी ऊपर वाली सीढ़ी पर ही खड़ा था। वहीं से उसने सुना कि राकेश नन्दा को सान्त्वना देने के बजाय उल्टे उसी को डाँट रहा था।

"उल्टा चोर कोतवाल को डाँटे ! गरजती हुई आवाज में बोलते हुए भूतनाथ भी रसोई-घर में पहुँच गया। वहाँ देखा, राकेश अपने अनाड़ी हाथों से नन्दा की सहायता करने की कोशिश कर रहा था। धुंए से रसोई का सारा कमरा भर गया था।

"तुम दोनों यहाँ से हट जाओ !" झिड़कते हुए स्वर में भूतनाथ बोला। "मैं जलाता हूँ और दोनों मुझसे आग जलाना सीख लो !" यह कहकर उसने एक चिमटे की सहायता से अँगीठी के कोयलों को नये ढंग से सजाकर रखा और फिर कन्डों और चैलियों को भी अपने अन्दाज से ठिकाने से लगाया। फिर कुछ रद्दी कागज पास ही कूड़ेखाने से उठाकर, वहीं पड़े हुए एक मैले-पुराने कपड़े को भी उठाया और अँगीठी के नीचे एक विशेष स्थान पर रखा। फिर अपनी जेब में माचिस की डिब्बी को खोजा। माचिस निकालने की क्रिया में पहले जेब से कुछ नोट निकल पड़े, फिर बीड़ी का एक बण्डल और अन्त में बड़ी मुश्किल से माचिस की एक डिबिया निकली। इधर-उधर खोजने पर एक आले से एक बोतल उठायी, जिसमें स्पष्ट ही मिट्टी का तेल भरा था। कागज में, कपड़े पर, चैलियों में थोड़ा-थोड़ा तेल छिड़कने के बाद, अन्त में कोयलों पर भी तेल छिड़का। इसके बाद माचिस जलाकर नीचे लगायी। भक्क से आग जल उठी और उसकी लपटें ऊपर कोयलों तक जा पहुँची। जब लपटें बुझ गयीं तब पास ही पड़े हुए पंखे को उठाकर अँगीठी के नीचे की खाली जगह में उसे झलने लगा। ऐसी दक्षता से भूतनाथ ने यह सब काम किया कि कोयलों ने जल्दी ही आग पकड़ ली और जल्दी ही कोयलों में आतिशबाजी की तरह चिनगारियाँ निकलने लगीं। फिर भी भूतनाथ आग को पंखे में धौंकता ही रहा। जब कोयले दहकने लगे तब बोला : "लाओ बरतन ! किसमें बनेगी सब्जी और क्या खाना बनेगा !"

नन्दा ने चुपचाप एक भगोना लाकर धीरे-से उसके आगे रख दिया।

सकुचायी हुई-सी आवाज में बोली : "इसी में बनेगी सब्जी। घर में आलू टमाटर और कटहर—ये तीन चीजें हैं, सब्जीवाली के पास और कोई चीज नहीं थी।"

"ठीक है ! इसके अलावा अब और चाहिए भी क्या ? काफी और बहुत अच्छी चीजें हैं। तुम दोनों ऊपर जाकर आराम करो, मैं अभी पाँच मिनट में सब्जी तैयार किये देता हूँ। तेल या घी, नमक और मसाला देती जाओ !"

नन्दा ने बिना किसी तकल्लुफ के सभी चीजें लाकर भूतनाथ के आगे रख दीं। "सब्जी कटी नहीं है, अभी काटे देती हूँ।"

"नहीं रहने दो ! मैं खुद काट लूँगा। चाकू दे दो !" भूतनाथ ने डाँटने के स्वर में कहा। नन्दा ने सब्जी की टोकरी और चाकू भूतनाथ के सामने लाकर रख दिया।

भूतनाथ ने दोनों के देखते-देखते सब्जी ऐसे सुघड़ ढंग से मिनटों में काटकर रख दी कि दोनों अवाक् होकर देखते रह गये। राकेश को पहली बार अपने निकम्मेपन पर लज्जा आने लगी।

"जाओ ! तुम दोनों ऊपर जाकर आराम करो ! मुझे यहाँ अकेले ही शान्ति से काम करने दो !"

अब तक दोनों भली-भाँति समझ चुके थे कि उस व्यक्ति के आगे किसी तरह की तकल्लुफबाजी करना वास्तव में बहुत बड़ा अपराध है। और दोनों बिना तनिक भी बहस के तुरन्त सीधे ऊपर चले गये।

प्रायः एक घन्टे बाद भूतनाथ ने दोनों को ऊपर से नीचे बुला लिया, बोला : "खाना तैयार है, लेते जाओ !"



नन्दा ने नीचे आकर देखा, एक बरतन में बड़ी-बड़ी, मोटी-मोटी तन्दूरी की तरह अच्छी तरह सिकी हुई आधी लाल और आधी भूरी रोटियों की एक बड़ी-सी गड्डी रखी हुई है। चावल, दाल, लाल-लाल सब्जी और चटनी तक पिसी रखी है। सारा खाना, विशेष करके दाल और सब्जी न जाने किस मसाले की करामात से इस तरह महक रही थीं जैसे जल्दी भोग लगाने का निमन्त्रण दे रही हों। ऐसी महक अपने जीवन में नन्दा को कभी किसी भी प्रकार के भोजन की सामग्री में नहीं मिली थी। उसने थालियों में खाना परोसा, दो-एक हरे मिरचे एक कोने में रख दिये और थोड़ा-सा नमक भी। उसके बाद एक कटोरे में घी लगाकर, उसे भी दोनों थालियों में छोड़कर वह खाना ऊपर ले गयी। उस दिन दोनों ने खूब डटकर खाना खाया और मन-ही-मन भोजन के अद्भुत स्वाद की बेहद तारीफ करने और रसोइये को बड़ी उदारता से धन्यवाद देने लगे।

"चीजें तो सब वही थीं जिन्हें हम रोज इस्तेमाल करते हैं, और मसाले भी वही थे, बल्कि आज मसाले बहुत-कुछ चुक चुके थे, फिर भी ऐसा बढ़िया खाना कैसे बन गया, बड़ा आश्चर्य है।" नन्दा ने कहा। उसकी आँखों में प्रशंसा जैसे टपकी पड़ती थी।

"हाँ, मैं भी यही सोच रहा हूँ। कुछ व्यक्तियों के हाथ ही में कोई सिद्धि होती है।" राकेश बोला।

नन्दा ने कहा : "प्रयत्न करने पर ही यह सिद्धि मिलती है। तुमने तो अभी तक तनिक भी कष्ट उठाने की कसम ही खा रखी है। यही बात है

कि तुम्हारे निकम्मेपन के कारण हमें कई दिन भूखों रहना पड़ा है। जब-जब भी मेरी तबीयत खराब हो गयी और मैं खाना न बना सकी तभी हमारे घर में फाके की नौबत आती रही। अब तुम भी इनसे खाना बनाना सीख लो, तो हमारे घर से एक बहुत बड़ी विपत्ति टल जाये! बोलो, सीखोगे?"

"मुझे चाहे जीवन-भर भूखा रहना पड़े, मैं यह काम कभी नहीं सीखूंगा। खाना बनाना क्या किसी भले आदमी का काम है? भूत भैया जैसे उजड्ड व्यक्ति ही इसे सीखते और सीख सकते हैं। यह आदमी मनुष्य नहीं, भूत है, नन्दा, तुम देखती चली जाओ। अभी क्या-क्या करिश्मे दिखायेगा। यह कुछ नहीं कहा जा सकता। तुम्हें 'बहू' कहता है, हालाँकि तुम उसकी कुछ भी नहीं लगती हो। वह उम्र में मुझसे छोटा है, मैं जानता हूँ; पर देखने में उम्र में बहुत बड़ा लगता है। कारण यह है कि वह आदमी नहीं, भूत है भूत! उसके माँ-बाप ने उसका बड़ा ही सार्थक नाम रखा था, न जाने क्या सोचकर!"

नन्दा का चेहरा एकदम मुरझाकर फक रह गया था। राकेश की नजरों से भी यह बात छिपी नहीं रही। वह एक कौर मुँह में डालने ही जा रहा था कि सहमकर रह गया। बोला: "यह तुम्हें क्या हो गया नन्दा? चेहरा एकदम पीला पड़ गया है। मुझे दो-तीन दिन से यह चिन्ता बुरी तरह सता रही है कि तुम्हें इस भूत के साथ अकेले छोड़कर बनारस कैसे जाऊँ, जबकि वहाँ जाना मेरे लिए बहुत ही आवश्यक हो उठा है!"

"क्यों हो उठा है इतना आवश्यक? नन्दा ने मुरझायी हुई आवाज में पूछा।

"तुम्हें क्या बताऊँ! फिर कभी विस्तार से बता दूंगा। बनारस से लौटने पर।"

"अगर ऐसी बात है तो चले जाओ, चिन्ता काहे की! मेरी कोई चिन्ता न करो। मैं सभी भयों को मन्त्र से भगा दूंगी। मेरे गुरु ने मुझे एक गुप्त मन्त्र दिया है, उसके आगे भूत क्या, बड़े-बड़े दैत्य और ब्रह्मराक्षस और बेताल भी भाग जाते हैं!"

खीझने पर भी राकेश नन्दा की बात से बहुत-कुछ आश्वस्त हो उठा। फिर बरबस हँसी का 'मूड' जगाते हुए बोला : "वह गुप्त मन्त्र क्या है ? मुझे भी बता दोगी तो मेरा बड़ा कल्याण होगा। मैं भी आजकल अनेक कारणों से अत्यन्त भयग्रस्त हो उठा हूँ।"

"तुम्हारे भय का कारण मैं जानती हूँ। पर एक बात बताये देती हूँ। भूतनाथ जी से हम लोगों के लिए भय का तनिक भी कारण नहीं है। वह हमारे लिए एक बहुत बड़ा वरदान सिद्ध हो रहे हैं!"

"किस रूप में ?" मुँह बिचकाते हुए राकेश ने पूछा।

"कई रूपों में। तुम्हें फिर कभी अवकाश में बता दूंगी। जब तुम वाराणसी से सकुशल लौट आओगे, तब।"

अपने ही लहजे में अपने प्रश्न का उत्तर सुनकर राकेश तनिक भी प्रसन्न नहीं हुआ। उसका मजाकवाला मनोभाव भी एकदम गायब हो चुका था।

"तुम तो अब पूरी रहस्यवादिनी बनती जा रही हो। बिल्ली की तरह खेलने लगी हो मुझसे जबकि चूहे के लिए प्राणों का संकट आ उपस्थित हुआ है।"

"तुम चूहे तो नहीं हो, तुम्हारे दुश्मनों पर आये प्राणों का संकट। तुम्हें अभी दुनिया में बहुत-कुछ करना और देखना है।"

"सो तो है ही ? अभी मैंने बताया न कि भूतनाथ से ही बहुत से प्राणलेवा करिश्मे मुझे अभी देखने हैं।"

"बनारस जाने के पहले मैं तुम्हें अन्तिम बार एक शिक्षा दिये जाता हूँ, नन्दा, कि इस भूत से बचकर रहना। उसके साथ कभी किसी प्रकार की घनिष्टता का कोई सम्बन्ध न रखना। वह दूसरे भूतों की तरह नहीं है। वह मुझे तीन-चौथाई आदमी—और वह भी झूठे किस्म का—लगता है और एक चौथाई भूत। खैर, उसकी धूर्तता का इलाज मैं एक दिन करके ही रहूँगा, पर अपने ही ढंग से। पर तुम पग-पग पर उससे बचकर रहना, मेरी यह सीख गाँठ बाँध लेना, मेरी इस बात को मजाक न समझना। इससे अधिक अभी मुझे कुछ कहना नहीं है।"

"तुम बड़े ही विचित्र और वहमी आदमी हो। एक भूत से भी ईर्ष्या

और विद्वेष रखते हो। निकम्मे और नपुंसक व्यक्ति ही इस कदर ईर्ष्यालु होते हैं। क्षमा करना, मेरी बात का बुरा न मानना, मैं कुछ खीझ से और कुछ हँसी में यह बात कह रही हूँ !"



उस दिन पूरी शाम और रात-भर राकेश नन्दा की इसी बात पर तरह-तरह से सोचता रहा कि क्या नन्दा की बात सचमुच में सही है ? क्या वह वास्तव में वैसा ही है जैसा कि उसने बताया है ? या उसने खीझ और परिहास में ही वह बात कही है, जैसा कि उसने बाद में स्वयं स्वीकार किया था ? यदि उसकी बात में लेशमात्र भी सचाई है तब तो यह उसके लिए बड़ी ही ग्लानि और शर्म की बात हुई। खैर, जो भी हो, नन्दा की आज की बातों का और जो भी फल हुआ हो, उसकी एक बहुत बड़ी चिन्ता दूर हो गयी—वह यह कि नन्दा को भूतनाथ के साथ अकेली छोड़ने में किसी भी प्रकार के खतरे का कोई कारण नहीं है और वह निश्चिन्त होकर दो-चार दिन के लिए बनारस जा सकता है। आखिर उसे अपनी रोजी का कोई न कोई ज़रिया तो खोज ही निकालना है। फिर चाहे उसके लिए हिमालय पहाड़ ही क्यों न खोदना पड़े या सागर की गहराई में ही डुबकियां लगानी पड़े। वरना वह नन्दा का (और अपना भी) विराट् शत्रु बने हुए विशाल विश्व में अपनी सुरक्षा के लिए कहीं तिल-भर भूमि का सहारा भी न पा सकेगा ! 'भाग्य का यह क्रूर परिहास देखो !' राकेश मन-ही-मन कहने लगा : कि कहाँ तो वह एक

अभिनव रोमान्स का जीवन बिताने के लिए अपनी जान पर खेलकर नन्दा को इलाहाबाद भगा लाया था और कहाँ दो ही दिन बाद श्मशान के भूतों के आधी रात के अट्टहास का पात्र बनकर रह गया! और मजा यह है कि एक सचमुच का भूत उसके घर की रखवाली कर रहा है! "भगवान, कहीं हो, तो सुनो मेरी यह करुण पुकार! मुझे बचाओ, मेरी रक्षा करो और मुझे इस भूतलोक से यथार्थ मनुष्यों के बीच ले जाओ। खयाली दुनिया में मुझे न भरमाओ। और अगर तुम्हारी यही इच्छा है तो मैं अब से कविता लिखना भी एकदम छोड़ दूंगा और प्रूफ की दुनिया में ही निरन्तर विचरण करता रहूँगा!" इस तरह सोचते-सोचते उसने देखा, उसकी आँखों में सहसा, बरबस, टपाटप आँसू गिरने लगे थे। और अपने उन आँसुओं पर भी उसे तरस आने लगा। "क्या मेरे इन बहुमूल्य आँसुओं को इसी बात पर बहना था! नियति के इस क्रूर परिहास से मैं कैसे मुक्ति पाऊं! मुझे क्या करना चाहिए! क्या जीवन था! अकेला था, जगह-जगह कवि-सम्मेलनों से सम्मानपूर्ण निमन्त्रण आते थे, और भोले-भाले श्रोताओं पर अपने कविता-पाठ से धाक जमाकर लोगों से कितना आदर पाता रहता था! सम्मानपूर्ण ढंग से अच्छी अर्थ-प्राप्ति भी होती रहती थी। न कहीं नौकरी का झंझट, न किसी की खुशामद, न लल्लो-चप्पो की बातें! साथ ही मन सब समय एक बहुत ही ऊँचे धरातल—बल्कि आकाश पर मुक्त उड़ानें भरता रहता था; और इतनी जल्दी, पलक मारते-न-मारते वह सारे सपनों की दुनिया एक मिथ्या मायाजाल की तरह न जाने कहाँ खो गयी! और एक भूत से भी हलकी हस्ती मेरी रह गयी है। नहीं, इस सारे डरावने मायाजाल से जल्दी ही मुक्ति होगी। काशी में भगवान् भूतनाथ कोई सम्मानपूर्ण रास्ता मेरे लिए निकाल दें—अब केवल इतनी ही प्रार्थना है—फिर चाहे मुझे पहले की ही तरह एकाकी जीवन ही क्यों न बिताना पड़े।"

सोचते-सोचते उसे चक्कर आने लगा। वह नियमानुसार चक्कर लगाने को ही घर से बाहर निकला था। फिर भी बीच रास्ते में ही सहसा रुक गया और पीपल के एक बड़े-से पेड़ के नीचे बने हुए चबूतरे

पर पस्त होकर बैठ गया और सुस्ताने लगा। वहीं पर आकाश-पाताल की बातें सोचते-सोचते अँधेरा हो गया। आसपास सड़क पर कहीं कोई रोशनी नहीं थी। चारों ओर सन्नाटा था। कोई आदमी न इधर से जाता था और न उधर से आता था। झींगुरों का अविराम और एक-रस झिंझिकार मन में बड़ी दहशत पैदा करने लगा। सहसा राकेश को याद आया कि पीपल के पेड़ पर और उसके आसपास भूत रहते थे। ऐसा बचपन में उसके गाँव का बूढ़ा चिथरू ठाकुर कहा करता था। वह भूतों की कई विचित्र लोक-कथाएँ भी सुनाया करता था। और आज उसका मन इतना खाली और सूना-सूना था कि भूतों से सम्बन्धित किसी भी अविश्वसनीय कथा और अन्धविश्वास पर विश्वास करने के लिए उतावला-सा हो रहा था। उसे कँपकँपी छूटने लगी और वह तत्काल उस वातावरण से भाग निकलने की सोचने लगा। न कहीं कोई रिक्शा खड़खड़ा या टनटना रहा था न किसी एक्के या ताँगे का ही कहीं से कोई शब्दाभास मिल रहा था। वह उठ खड़ा होना चाहता था, पर बरबस काँपते हुए पाँवों में खड़े होने की तनिक-सी भी ताकत महसूस न हो रही थी। फिर उठना तो था ही। उसने उठने के लिए दायें पाँव को जमीन पर जोर से दबाना चाहा, पर दुर्भाग्य से उस पाँव में ऐसी झुन्नी चढ़ गयी थी कि किसी तरह उठा ही नहीं जाता था। बूढ़े ठाकुर का ही बताया हुआ एक टोटका उसे याद आया। पाँव पर झुन्नी चढ़ी हुई हो, तब पाँव के अंगूठे के नाखून को खुजलाना चाहिए। उसने वैसा ही किया। और आश्चर्य! यह टोटका काम कर गया। झुन्नी ठीक हो गयी और वह तत्काल उठ खड़ा हुआ। कुछ दूर तक वह धीरे-धीरे डेरे की ओर चलता हुआ, आगे बढ़ा। सामने एक लम्बा-तगड़ा आदमी उसकी ओर आता हुआ दिखाई दिया। ज्यों-ज्यों वह आदमी नजदीक आता गया त्यों-त्यों उसकी पगध्वनि उसे अधिकाधिक भयभीत करने लगी। जब दोनों का एकदम आमना-सामना हुआ तब सहसा उस धुंधलके में भी राकेश ने आगन्तुक को पहचान लिया, "भूत भैया, तुम इस समय यहाँ कहाँ?"

"अरे कैलाश, तुम यहाँ क्या कर रहे हो? घर पर बहू अकेली रो

रही है, चलो !"

"भूत भैया, तुम आश्चर्यजनक भूत या आदम हो, तुमने यह कैसे जान लिया कि इस समय मैं इस मनहूस जगह पर मिलूँगा ? चलो !"

दोनों साथ-साथ डेरे की ओर चल पड़े।

"तुम नहीं जान सकते कैलास, कि मेरा एक अदृश्य साथी है, जो सब समय मुझे बड़े-बड़े झंझटों और जंजालों में भी फँसाता रहता है और साथ ही जो सब समय मेरी रक्षा भी करता रहता है। वह मुझे ऐसी-ऐसी गुप्त सूचनाएँ देता रहता है कि सुनकर, देखकर मैं दंग रह जाता हूँ। आज उसी ने मुझे बताया कि तुम अकेले इस सुनसान सड़क में एक पीपल के पेड़ के नीचे फँस गये हो और मैं बिना कुछ सोचे, सीधे यहीं चला आया !"

"पर बात क्या है ? नन्दा क्यों रो रही है !"

"कहती है, उसे उस मकान में भय मालूम हो रहा है। उसने यह भी बताया कि तुम कल बनारस जा रहे हो और वह अकेली रह जायेगी। चिन्ता से उसका भय और बढ़ता जा रहा है। मैंने उसे बार-बार समझाया कि वह अकेली नहीं रहेगी मैं सब समय उसके साथ रहूँगा और उसकी सेवा करता रहूँगा। पर यह तो बताओ, तुम बनारस जा क्यों रहे हो ? ऐसा कौन-सा जरूरी काम अचानक आ पड़ा ?"

"मैंने तुम्हें बताया नहीं, भूत भैया, इधर मेरी आर्थिक स्थिति इस क़दर बिगड़ गयी है कि दो जून भोजन का प्रबन्ध भी मैं बड़ी मुश्किल से कर पा रहा हूँ। मेरे पिताजी, जिनकी आर्थिक सहायता का मुझे बहुत बड़ा भरोसा रहता था, अब नहीं रहे। पिछले वर्ष ही उनकी मृत्यु हो चुकी थी।"

रात का अँधेरा उत्तरोत्तर बढ़ता ही चला जा रहा था। जिस सड़क से होकर दोनों एक-दूसरे से प्रायः सटे हुए चले जा रहे थे वह भी बहुत परिचित नहीं थी। राकेश अपने को एक ऐसी विचित्र मनःस्थिति में पा रहा था, जिसमें व्यक्ति अपने ही भीतर छिपी हुई सारी गुप्त बातें एक-एक करके बाहर निकालकर, अपने को पूरा उघाड़कर अपने अन्दर

के सारे बोझ को एकदम हल्का करके अपने को पूर्णतः मुक्त कर देना चाहता है। भीतर के बोझ का एक कण भी सहन कर सकने की स्थिति में वह अपने को नहीं पा रहा था। बोला : "भूत भैया, मैं तुम्हें कैसे बताऊँ कि मैंने इस स्थिति में अपने को क्यों और कैसे डाल दिया ; न जाने कौन-सी दुर्बुद्धि मेरे माथे में जगी थी। मुझे उसे बताने में भी लज्जा मालूम हो रही है। बात यह है, भूत भैया, कि नन्दा मेरी विवाहित पत्नी नहीं है—"

"तब क्या वह तुम्हारी अविवाहित पत्नी है ?" भूतनाथ बिना एक पल के भी अन्तर से तत्काल यह प्रति-प्रश्न कर बैठा।

"नहीं, भूत भैया, वह मेरी अविवाहित पत्नी भी नहीं है।"

"तब वह किस स्थिति में तुम्हारे साथ रह रही है ?"

"हम दोनों एकदम 'वैक्युम' में—निपट शून्य की स्थिति में जी रहे हैं, यह बात तुम्हें कैसे समझाऊँ ?"

"अरे, मुझे समझाने की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं सब समझ रहा हूँ। तुम अपने को और नन्दा को समझाओ पहले !"

"यह ऐसी विकट समस्या है कि मैं निश्चय ही जल्दी ही पागल हो जाऊंगा।"

"पागलपन की स्थिति भी बड़े सुख की स्थिति होती है, कैलास, मेरी यह बात गाँठ बांध लो ! अब मुझी को देखो न, मैं पागल नहीं तो और क्या हूँ ? यह ठीक है कि परिस्थितियों ने ही मुझे पागल बनाया है—पागल इस रूप में कि मैं एक जीता-जागता मनुष्य होते हुए भी अपने को एक भूत समझे बैठा हूँ और अपने भूत होने की बात का प्रचार भी दुनिया में मैंने ही स्वयं किया है ! मेरी हालत इस हद तक नाजुक हो उठी है कि मुझे इस निराधार बात पर स्वयं ही विश्वास होने लगा है कि मैं मनुष्यों के बीच में एक छाया की तरह जी रहा हूँ—और एक हवाई प्राणी से ज्यादा हस्ती मेरी नहीं है। और, इस कल्पना में कितना सुख है ! आज के युग में मनुष्य बनकर जीने में तनिक भी सुख नहीं है, कैलास !—"

"मैं कैलास नहीं हूँ, भैया, मेरा नाम राकेश है।"

"तुम राकेश कब से हुए ! युनिवर्सिटी में तो तुम कैलासविहारी द्विवेदी के नाम से ही परिचित थे !"

"इतनी याद अभी तक आपको है। फिर भी आप कहते है कि आप पागल हैं !"

"मैं स्वयं अपनेपन को भी कुछ खो चुका हूँ—राकेश। इतना निश्चित रूप से जान लो। फिर भी—बल्कि शायद इसीलिए मैं सुखी हूं, बहुत सुखी ; मेरी इस बात पर विश्वास करो।"

"क्या सुख है तुम्हें अपनेपन को भूलने में भैया, मैं यह जानने के लिए बहुत उत्सुक हूँ।"

"देखो, राकेश, जानबूझकर इस कदर मूर्ख मत बनो ! तुम किसी जमाने में कवि थे—क्यों ?"

"मैं अब भी कविता लिखता हूँ, भैया !"

"तब कवि होने पर भी तुम इतनी-सी बात नहीं समझते कि अपनेपन की अनुभूति ही मनुष्य के सभी दुःखों का मूल कारण है। इसी कारण मेरे गुरु ने मुझे सबसे पहला उपदेश यही दिया था कि यदि तुम इस संसार में पूर्ण रूप से सुखी रहकर जीना चाहते हो तो उसका एक-मात्र उपाय यही है कि अपनेपंन की अनुभूति को चारों ओर से लपेटकर बिस्तर की तरह बांध लो और पाप की उस गठरी को एक तेज धार-वाली नदी में फेंककर बहा दो। वह फिर भी बहेगी नहीं, तनिक मौका पाते ही नीचे डूब जायेगी और वहीं से नदी के सारे पानी को गन्दा करती रहेगी। फिर भी नदी का बहाव किसी-न-किसी उपाय से उस गठरी की सारी गन्दगी से अपने को मुक्त कर ही लेगा। यह अपनापन एक कोढ़ की तरह मनुष्य के व्यक्ति से चिपका हुआ रहता है और तनिक मौका पाते ही उसे गन्दगी के नरक-कुण्ड में पूरी तरह धकेलकर ही चैन लेता है। वह मनुष्य को जनम-जनम के लिए एक नरक से दूसरे नरक में भटकता रहता है और युग-युग के कर्म-योग से दौरान कभी एक पल के लिए भी चैन की साँस नहीं लेने देता। जिस प्रकार एक हाथी की सड़ी हुई लाश को असंख्य चींटियाँ घेरे रहती हैं उसी प्रकार मनुष्य का अहम् चिन्ताओं के असंख्य चलते-फिरते कीटों और छोटे-छोटे लपलपाते

जीवों की विशाल सेना की सहायता से उसकी प्रतिपल अशान्ति, पीड़न, असंख्य दुःख और कष्टों का शिकार बनाकर उसके अस्तित्व को छलनी बनाये रहता है। अपनेपन की इसी अनुभूति के कारण ही घर-घर में नरक की ज्वालाएँ धधक रही हैं, बिना किसी अपवाद के, कहीं कोई भी घर या मानव-प्राणी ऐसा बचा हुआ नहीं है जिसकी खोपड़ी के भीतर की लकदार गुद्दी असंख्य विषैले बिच्छुओं, कँचुओं, मच्छरों, चींटियों और खटमलों के असह्य दंशों से मुक्त हो। चाहे कोई एवरेस्ट के आस-पास की किसी एकान्त चोटी में जा छिपकर बैठे या किसी भूगर्भीय अँधेरी गुफा में, या समुद्र के किसी अज्ञात छोर में तम्बू तानकर छिपा रहे; दुःख, जलन और चिन्ता के ये अनगिनत मच्छर, चींटियाँ और खटमल और पिस्सू उसे एक पल—बल्कि विपल के लिए भी चैन नहीं लेने दे सकते—जीवन का यही नियम है। अहंता की—अपने अस्तित्व की संवेदना की। यही नियति प्रकृति ने निर्धारित की है। इसलिए यदि चिन्ता की जलन से तनिक भी विश्राम चाहते हो, कैलास, तो अपनी अहंता के इस कड़े, गन्दे, दागी और विकट बदबूदार परिधान को चीर-कर उबारो और फेंक डालो, तभी समझ पाओगे कि सुख और सन्तोष नाम की चीजें केवल शब्द-मात्र नहीं है। इनका भी अस्तित्व वैसा ही यथार्थ है जैसा हमारे ऊपर के इस तारालोकित आकाश का, पाँवों के नीचे की धरती का! और, यह भी समझ लो कि तुम न कैलास हो न राकेश!"

"तब क्या हूँ मैं।" राकेश ने पूछा।

"तुम हो—छायादास! तुम छाया भी नहीं हो। इसलिए अपने को एक कल्पित और अयथार्थ छाया का दास समझते रहो, तुम्हारी नन्दा है एक छायामयी नारी। तुम तन-मन से उसी के दास बने रहो। तभी तुम्हारा कल्याण सम्भव है' वरना तुम प्रचण्ड आँधी के वेग से भटके हुए बादल के छोटे-से फाहे से अधिक हस्ती नहीं रखते हो। 'मैं-मेरा' सब असार है। 'तू-तेरा' की धारणा ही जीवन-दर्शन का सार है, यह बात जब तक तुम्हारी चेतना में सीमेण्ट की तरह जम नहीं जाती तब तक तुम कहीं जाओ, चैन की साँस नहीं ले पाओगे। मथुरा से भागकर तुमने

सोचा था कि इलाहावाद में शान्ति से रहेंगे। पर यहाँ आते ही तुम्हारी एक छोटी-सी लगनेवाली समस्या कितने वच्चे दे चुकी है और वे सव वच्चे मिलकर तुम्हारे सिर पर चौवीसों घण्टे किस तरह काँव-काँव मचाते जा रहे हैं! कैसे छुटकारा पाओगे इनसे? जव तक अपनेपन की खोखली संवेदना को चकनाचूर करके उसे गंगाजल में मिलाकर पी न जाओ तव तक! वनारस जाकर भी तुम्हें तनिक भी शान्ति नहीं मिल पायगी। यहीं रह जाओ मेरे आगे अपने सारे राज खोलकर रख दो। मैं भी तुम्हारे आगे अपने सभी भेद खोल देने की सोच रहा हूँ। हम दोनों अपने अस्तित्व के वरतनों को एक-दूसरे के आगे रीता करके रख दें, तभी अपने-अपने अस्तित्व की यथार्थता हम समझ पायेंगे। अस्तित्व से ऊपर उठकर ही अस्तित्व की सचाई को समझा जा सकता है। केवल 'अस्तित्व! अस्तित्व!' चिल्लाने से कुछ काम न वनेगा।"

"वाह भैया, वाह! तुमने एक अच्छा-खासा लेक्चर ही दे डाला! और सच मानो, मुझे तुम्हारी वातों से वड़ा ही आराम मिला है और हमारी आधी से अधिक चिन्ताएँ छूमन्तर हो गयी हैं।"

"अवे मूर्ख, सुन! अभी मेरा लेक्चर समाप्त नहीं हुआ, अभी उसका आरम्भ ही चल रहा है। मेरी वात न तनिक भी नयी है, न पुरानी। वह मानवीय सृष्टि का अनादि रहस्य है। 'मैं' और 'मेरा' की अनुभूति झूठ नहीं है—"

"तुम अपनी ही वात को काट रहे हो, भैया, अभी तुमने वताया था कि 'मैं' और 'मेरा' निरा झूठ और भ्रम है। अव उससे उल्टी वात कह रहे हो।"

"अवे, सुनता भी जा!" झिड़ककर भूतनाथ ने कहा। उसकी आवाज राकेश को ऐसी लग रही थी जैसे आधी रात का भूत लम्वे मौन के वाद गरजने लगा हो। उसने भूतनाथ के दायें हाथ का आस्तीन पकड़ लिया। वह अनन्त शून्य के वीच कहीं कोई आधार खोज रहा था।

'मैं और मेरा'—सृष्टि का मूल वीज है। पर उस वीज से जो फूल उगता है वह व्यक्ति के मन में निरा भ्रम पैदा करता है। वह वीज

तब तक कोई परिपक्वता उपलब्ध नहीं कर पाता जब तक वह फल में परिणत नहीं हो जाता। उसके फल को पकने के लिए 'तू और तेरा' के फल के रस से उसे सींचते रहना होता है। हर आदमी, चाहे वह निपट मूर्ख या कैसा ही न्यायी क्यों न हो, उससे लेकर बड़े-से-बड़े तथाकथित महत्त्वपूर्ण व्यक्ति तक एक विशेष स्थिति में उठने पर यह सोचता है कि उसकी अहंता का बीज अमृत-फल देने लगा है, और उस अहंता के फल की विषैली कड़ुवाहट की कोई चेतना उसे नहीं हो पाती। अमेरिका का राष्ट्रपति निक्सन सुख और सुविधा की उस स्थिति तक पहुँच चुका है जिसकी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते, उसकी अहंता ने उसे, बरबस जाल-जंजाल के ऐसे लपेटों में जकड़ लिया है कि वह अपने को खुदादाद समझने लगा है और भारत, बांग्ला देश और वियतनाम के करोड़ों व्यक्तियों की तबाही से उसी तरह खेलने में सुख का अनुभव कर रहा है जिस तरह बिल्ली एक अधमरी चुहिया से खेलने में करती है। उसका अहम् हर हालत में सन्तुष्ट रहे, उसकी एकमात्र महत्त्वाकांक्षा इतनी ही है। वरना, यदि वह अपनी अहन्ता से मुक्त होकर चीजों को उनके यथार्थ परिवेश में देख सकने की समर्थता प्राप्त कर सके तो देखेगा कि करोड़ों व्यक्तियों के अस्तित्व की संवेदना के साथ वह जिस लापरवाही से खेल रहा है, उसकी तुलना में उसके अकेले का अहम् नितान्त तुच्छ है। भाग्य ने उसे सारे विश्व का सच्चा कल्याण कर सकने की सामर्थ्य दी है, पर इतने बड़े सुयोग से वह फुटबाल की तरह खेल रहा है और अपने दायें-बायें ऐसी अन्धी चालें चल रहा है कि स्वयं नहीं जानता कि वह क्या कर रहा है। व्यक्ति का अहम् इस बुरी तरह उसे बरगलाता है। केवल निक्सन की ही बात नहीं है। याह्या और माओ के सम्बन्ध में तुम स्वयं ही सोच सकते हो। मैं तो अपने ही देश की उस स्वयंसिद्धा आदर्श महानारी के भीतर निहित अहंता के विस्फोट से चकित हूँ जो वर्तमान युद्ध के संकट के समय अपने बायें हाथ से अभिशापों की फुलझड़ियाँ छोड़ रही है। यदि अहम् को उच्च धरातल पर ले जाय तो बात ही एकदम बदल जाती है। पर निक्सन, माओ और चाऊ के विकृत अहम् में घुन लग गया है। साधारणत: लोग अपनी एक तनिक-सी छींक को जो महत्त्व देते हैं उतनी

परवाह वे पूरे के पूरे राष्ट्रों की बरबादी और तबाही की नहीं करते ? इसलिए जय हो मनुष्य के इस अहम् की। पर जब तक प्रकृति के मूल तत्त्वों में ही पूरा परिवर्तन न हो जाय या सृष्टि-प्रक्रिया की मूल योजना को किसी उपाय से बदल न दिया जा सके, तब तक अहम् व्यक्ति के भीतर पूर्णतः अचल होकर सर्वप्रधान बनकर प्रतिष्ठित रहेगा ! अब खात्मा कर दिया जाय इन सब बेमतलब की बातों का। हम डेरे के निकट आ पहुँचे हैं। अब हमको केवल एक ही बात का हल निकालना है। वह यह कि तुम अपने वर्तमान संकट से कैसे उद्धार पा सकते हो ?"

"संकट ! तुम्हें कैसे मालूम हुआ है कि मैं वर्तमान में किसी संकट में फँसा हुआ हूँ ?"

"अबे, तेरा दिमाग खराब हो गया है क्या ? अभी कुछ ही देर पहले तुमने ही तो मुझे बताया था कि तुम इस समय विकट आर्थिक संकट में आ फँसे हो और यह भी कि नन्दा को यहाँ लाकर तुम्हारी परेशानियों का अन्त नहीं है ! मैं किसी प्रकार भी यह न देख सकूँगा कि तुम दोनों मेरी उपस्थिति में किसी असाधारण-से-असाधारण संकट का सामना करने में असफल हो जाओ। मैं विशेष करके नन्दा के बारे में सोच रहा हूँ। उसने विशुद्ध रूप से एक सन्त नारी की आत्मा पायी है। हाँ, तो अब साफ-साफ बताओ, तुम्हारी मूल कठिनाई क्या है ? यदि अभी केवल आर्थिक संकट ने ही तुम्हें विपत्ति के जाल में फँसा लिया है, तब तो उसका इलाज बड़ा आसान है—कम-से-कम मेरी दृष्टि में। मैं दो दिन के भीतर ही इस संकट से पूर्ण मुक्ति दिला सकता हूँ। पर यदि इसके अतिरिक्त कुछ और भी समस्याएँ तुम्हें परेशान कर रही हों तो उनका पता लगने पर उनके उपाय के बारे में सोचा जायेगा।"

"मैं केवल इतना ही जानना चाहूँगा भूत भैया, कि तुम किस उपाय से आर्थिक संकट के चौमुखे पंजों से मुझे मुक्ति दिला सकोगे। तुम्हें यह भी मैं बता देना चाहूँता हूँ कि इस समय केवल आर्थिक संकट ही मेरे लिए मारक समस्या बना हुआ है।"

"तब ठीक है। परसों दिन में तीन बजे से पहले ही तुम इस संकट से अपने को पूर्णतः मुक्त पाओगे !"—ऐसे निश्चित स्वर में भूतनाथ ने

यह बात कही कि राकेश के आश्चर्य और अकारण भय का ठिकाना न रहा ! "एक पागल की बात का क्या भरोसा !" वह सोचने लगा। "पर वह साधारण पागल कदापि नहीं है, इतना वह उसकी बातों से जान चुका है। वह बिना मतलब के बड़बड़ाता नहीं और एक भी असम्भव बात कभी नहीं बोलता। कौन जाने, उसके पास सचमुच में मेरे समाधान की कोई कुंजी निकल ही आये। और यदि उसकी बात सच निकली और परसों तीसरे पहर मैं वर्तमान के विकट संकट से पूर्णतः मुक्त हो जाऊँ तब अपने उस आकस्मिक और अप्रत्याशित आनन्द के अतिरेक को किस गुप्त तिजोरी या लॉकर में छिपा पाऊँगा ! क्या भूत भैया अपने किसी चमत्कार से किसी लॉटरी का प्रथम पुरस्कार ही मुझे दिला सकने में समर्थ सिद्ध होंगे !" और यह सोचते ही उसने अपनी वण्डी की भीतरी जेब में हाथ डाला—यह जानने के लिए कि लॉटरी का जो टिकट उसने एक सप्ताह पहले खरीदा था, कागज का वह छोटा-सा टुकड़ा अपनी जगह पर सुरक्षित है या नहीं ! और उसके हृदय की धड़कन बन्द होने को हो गयी, जब उसने वण्डी की भीतरी जेब में आधा टुकड़ा भी किसी कागज का नहीं पाया। वह नित्य एक बार वण्डी की जेब में हाथ डालकर देख लिया करता था कि लॉटरी का टिकट सुरक्षित है या नहीं। पर इस समय हाथ डालने पर जब वह कागज का चिथड़ा न मिला तब उसे लगा कि उसके हृदय की धड़कन ही तत्काल बन्द हो जा रही है। उसके मुँह से बरबस अस्फुट स्वर में यह चीख निकल पड़ी : "आह !" सुनकर भूतनाथ ने धीरे से उसकी पीठ पर अपना स्नेह-बोझिल हाथ रखा और भरसक कोमल स्वर में उसने पूछा : "कैलास, क्या हुआ ? चीख क्यों उठे ? घबराओ मत। तुम्हारी जिन्दगी एक नया मोड़ लेने जा रही है। लॉटरी टिकट के लिए चिन्तित न होओ ! वह तुम्हारे किसी काम नहीं आ सकता। एक इन्द्रजाली आशा से अपने मन को मत बांधो। मैंने जो आश्वासन तुम्हें दिया है, उसको परम यथार्थ फिलहाल मानकर चलो !"

दोनों मकान के दरवाजे के पास पहुँचे और बाहर से राकेश ने बड़े जोरों से साँकल खटखटायी। लॉटरी टिकट के खोये जाने से वह बहुत

अधीर हो उठा था और भूतनाथ का दिया हुआ आश्वासन उसे अब तनिक भी शान्ति नहीं दे रहा था। भीतर पहुँचते ही राकेश ने नन्दा से पूछा : "मेरी बण्डी से कोई कागज तुमने निकाला था ?"

"मैंने लॉटरी टिकट का-सा कई जगहों से मुड़ा हुआ एक पुराना कागज जरूर निकाला था और उसे चूल्हे में डाल दिया !" नन्दा ने उत्तर दिया।

"ऐं !" बरबस राकेश के मुँह से फिर एक चीख निकल पड़ी। वह टिकट पुराना नहीं, एकदम नया था। आज उसका 'ड्रा' होनेवाला था !"

"उस समय मेरा मूड ठीक नहीं था ! मैं यह सोच-सोचकर गुस्सा हो रही थी कि इतने दिनों से तुम हर बार लॉटरी-टिकट खरीदते चले जा रहे हो, पर भाग्य ने कभी इतना-सा साथ भी नहीं दिया कि एक छोटा-सा भी पुरस्कार तुम्हें मिल जाता ! टिकट को पुराना समझकर मैंने अधीर होकर उसे चूल्हे में झोंक दिया !"

"यह तुमने बड़ा अन्धेर कर दिया ! मैं इस बार भी बड़ी आशा लगाये बैठा था।"

"यदि वह टिकट नया ही था, तो भी तुम इतना सोचकर निश्चिन्त रहो कि तुम्हें उस पर भी पिछले सभी टिकटों की तरह कोई पुरस्कार नहीं मिलेगा। मैंने टिकट नम्बर नोट कर रखा है। कल तुम जाकर देख आना —टिकट बेचनेवाले दफ्तर में !"

"अब मैं देखने कभी नहीं जाऊँगा।"

"मारो गोली, कैलास, मैं पहले ही तुमसे कह चुका हूँ। तनिक अपना हाथ दिखाओ !" और राकेश ने तत्काल अपना हाथ बढ़ा दिया।

भूतनाथ ने गौर से उसके हाथ की रेखाएँ देखनी शुरू कीं।

"तुम्हारे हाथ में दारिद्र्य योग है। एक रेखा अवश्य ऐसी है जो गाहे-बगाहे तुम्हें दो-दो, चार-चार हजार रुपया दिलाती रहेगी पर एकमुश्त कोई बड़ी रकम तुम्हें कभी प्राप्त न हो सकेगी। एक रेखा, बृहस्पति के कोठे में ऐसी है, जो निपट दिवालियेपन से तुम्हारी रक्षा बराबर करती रहेगी। और दूसरे प्रकार के संकटों से भी तुम्हें बचाती रहेगी। बस, तुम जीवन के एक-एक क्षण का आनन्द लेते हुए निश्चिन्त होकर, एक-

एक पग आगे बढ़ते चलो। कोई भी बड़ा धक्का तुम्हें कभी नहीं लगेगा। हल्की-हल्की ठोकरें लगती रहेंगी। पर वे तुम्हें कोई बड़ी हानि पहुँचाने के बजाय जीवन सम्बन्धी तुम्हारे अनुभवों को बढ़ाती चली जायेंगी। समझे? तुम 'मीडिओॉकर' किस्म के आदमी हो, कोई विशेष प्रतिभा तुमने नहीं पायी है। बड़ी प्रतिभा न होने में ही भलाई है—इसी कारण तुम्हें न तो कभी भाग्य का महत् उत्कर्ष देखने को मिलेगा, न कोई ध्यान देने योग्य अपकर्ष ही। बस बहुत छोटे-मोटे परिवर्तन तुम्हारे जीवन में आते रहेंगे, और मन्दगति से जीवन की प्रगति चलती रहेगी। महान् संकटों को सहन करने लिए बड़ा कलेजा चाहिए, जो तुम्हारे पास नहीं है। इसलिए 'तुम आनन्द करहु मृग जाये!' कंचनमृग की खोज तुम्हें कभी नहीं भटकायेगी और न कंचन-मृग ही तुम्हें कभी अपनी तरफ खींचेगा। इसलिए तुम निश्चिन्त रहो! मुझे तुम कभी समझ ही नहीं पाओगे, इसलिए अपनी कहानी तुम्हें क्या बताऊँ?"

नन्दा किसी अज्ञात कारण से इस कदर हौलदिल हो उठी थी कि उसे अकेली छोड़कर बनारस जाने का साहस ही राकेश को नहीं हुआ। भूतनाथ ने उसे जो वचन दिया था उसकी पूर्ति की प्रत्याशा के लिए भी उसे ठहर जाना पड़ा।

तीसरे दिन ठीक तीन बजे किसी ने उसके कमरे का दरवाजा खटखटाया। वह हड़बड़ाता हुआ उठ बैठा। जैसे ही उसने दरवाजा खोला, भूतनाथ ने सचमुच के भूत की तरह भीतर प्रवेश किया। उसके बायें हाथ में कागजों का-सा एक पुलन्दा था। देखकर राकेश का हृदय धकधका उठा।

"ये लो, कै···नहीं—राकेश, इस गड्डी को संभालकर अपने पास रख लो, और इन नोटों को आवश्यकतानुसार खर्च करते रहो!"

राकेश ने गड्डी अपने काँपते हुए हाथ में ली। काफी भारी थी। उसमें नोट ठसाठस भरे हुए थे।

"जरा इसे खोलकर गिनो तो। मैं भी जानना चाहता हूँ, ये कितने हैं।" मैंने आज तक इन्हें कभी गिना नहीं।

"मैं जरूर गिनूंगा, भूत भैया और एक दिन पाई-पाई करके कुल

रुपयों का भुगतान कर दूंगा।"

"अरे नहीं, नहीं !" भूतनाथ ने उसे टोकते हुए कहा। "तुम्हें एक पैसा का भी भुगतान नहीं करना होगा। मैं कोई महाजन नहीं हूँ..."

"तुम महापुरुष हो, भैया !"

"गलत ! मैं महाभूत हूँ—परले दरजे का छँटा हुआ महाभूत ! पृथ्वी जल, वायु, आकाश और अग्नि के बाद ही होता हूँ। किसी को रुपया देने की मेरी यह पहली शर्त है कि जो व्यक्ति उसे स्वीकार करे वह उसे ऋण न समझकर अपना सहज अधिकार माने !"

"पर भैया, इतना रुपया तुम्हारे पास आया कहाँ से ?"

"यह फिर बताऊँगा, अभी यह चुपचाप मान लो कि यह सब रुपया तुम्हारा ही है, मेरा नहीं !"

सुनकर राकेश स्तब्ध रह गया। "अच्छा' देर हो गयी है। दो पराँठे खाकर नास्ता खत्म करो, चाय पियो और चलो मेरे साथ !"

"उसी पीपल के पेड़ के नीचे, जहाँ तुम कल बैठे थे। वहीं जाकर गप-शप करेंगे।"

"अच्छी बात है, मैं तैयार होता हूँ।"

हाथ-मुंह धोकर, कपड़े पहनकर जब राकेश तैयार हुआ तब दोनों बाहर निकल पड़े।

चलते-चलते दोनों उसी स्थान पर पहुँचे, जहाँ कल राकेश बैठा हुआ था।

"पीपल के नीचे का यह चबूतरा है तो बहुत उत्तम स्थान, पर है यह एकदम खुली जगह। मैं कहीं तनिक ओट चाहता हूँ। वह देखो बायीं ओर सामने एक बहुत पुराना खण्डहर दिखाई दे रहा है। उठो, वहीं चलें।"

भूतनाथ की बात सुनकर राकेश भी वहाँ चलने को राजी हो गया।

खण्डहर के भीतर एक जगह बहुत एकान्त थी। भूतनाथ ने एक बड़े पेड़ के बड़े-बड़े पत्तों से जल्दी एक टहनी तोड़ी और उससे बुराई देकर फर्श साफ किया और फिर दोनों सड़क की ओर मुँह किये वहीं बैठ गये।

सड़क पर बिजली के एक खम्भे से आग की एक लकीर आर-पार दौड़ गयी। खम्भों पर जो दो-एक रोशनियाँ टिमटिमा रही थीं वे गोल

हो गयीं।

"चलो, यह इस वात की निशानी है कि अपनी राम-कहानी कहने का शुभ-मुहूर्त आ गया है। तो सुनो, ध्यान देकर।" भूतनाथ ने धीमी आवाज में कहा।

"हाँ भैया, सुनाओ। मैं वहुत उत्सुक हूँ और कान खोलकर, ध्यान देकर मन लगाकर सुनूंगा।" राकेश बोला।

"तो सुनो। सवसे पहली वात मेरे सम्वन्ध में यह जान लो कि मेरा जन्म चमरियाने में हुआ है, जहाँ मकान के नाम पर इसी तरह के खण्डहर थे। सारी वस्ती, जैसा कि तुम अनुमान लगा सकते हो, वड़ी ही गन्दी, और चमड़े की दुर्गन्ध से पूर्ण थी। जिस खण्डहर में और परिवार वाले रहते थे उसके एक कोने में मेरे वावा की मचिया पड़ी रहती थी। वह चौवीसों घण्टे, सवेरे दोपहर, शाम और रात में सव समय उसी पर पड़े रहते थे। कमरे से इधर की दीवारों और उलटी छत पर सैकड़ों छोटे-छोटे चिमगादड़ सव समय उलटे टँगे रहते थे। चिमगादड़ कभी वाहर नहीं निकलते थे। जव चौवीसों घण्टे उलटे टँगे-टँगे उकता जाते हैं तव, शाम को अँधेरा होने पर तीन-तीन चार-चार की टोली में उस छोटी-सी अँधेरी कोठरी का चक्कर लगाते। उनके छोटे-से पंखों की फड़-फड़ आवाज से मेरी दहशत और घवराहट की सीमा न रहती। जव मैं छोटा-सा वच्चा था, छह-सात महीने का, तभी से वरावर वावा की मचिया में उन्हीं की वगल में लेटा रहता। वाद में मेरी मां ने वताया कि मैं इधर छत पर चिमगादड़ों को उलटे लटके देखकर, मचिया में उछल-उछलकर मुसकराता और मचलता रहता। पर जव ये पंख फैलाकर फड़फड़ाते हुए कमरे का चक्कर लगाते, तव मारे भय के काँपने लगता और चीख मारता रहता। जव मैं कुछ वड़ा हुआ तव वावा मुझे अपनी गोद में खेलाते हुए निर्गुन गाते रहते। मैं उन गीतों का कोई अर्थ तव नहीं समझता था, पर इतना अस्पष्ट-सा अनुमान शायद करता था कि गीत की एक उदास धुन वावा की शव्दावली से निकलकर, चारों ओर के वातावरण में फैलती हुई, दूर क्षितिज को छूकर लौट आती थी और तव उसकी सारी कड़ियाँ सिमटकर एक पेन्सिल की तरह की एक नुकीली रेखा में वदलकर मेरे

हृदय के भीतर बन्द एक सूक्ष्म छिद्र में धीरे-धीरे समाती जाती थी। दस महीने की उम्र से लेकर दस साल की अवस्था तक मैं उसी वातावरण में, उसी मचिया में, बाबा के ही संसर्ग में बड़ा हुआ। चिमगादड़ों से मेरा सम्पर्क कभी न छूटा और बाबा के कण्ठ से निकले हुए निर्गुन संगीत से चिमगादड़ों की तरह ही आत्मा को जकड़ लेनेवाले विश्वव्यापी विषाद के तेज और मधुर विष में बुझे हुए स्वर-बाणों की बौछार के बीच मेरे जीवन के वे प्रारम्भिक दिन बीते। जब मैं कुछ और बड़ा हुआ तब अपने चारों ओर की गन्दगी का माहौल मुझे बुरी तरह खलने लगा। बाँभन और ठाकुरों के कुछ छोटे-छोटे लड़के मेरे साथी थे। मैं तरह-तरह के खेल उन्हें सिखाता था और पतंग भी बहुत अच्छी उड़ाता था। इस कारण वे बरबस मेरी ओर खिंचे चले आते थे। उनके घरवाले उन्हें मेरे साथ खेलने से बार-बार मना करते थे, पर बरजने पर भी वे नहीं मानते थे और चोरी-छिपे मेरे पास खेतों में चले आते थे। उनके घरवाले उन्हें बुरी तरह डाँटते और इस कदर पीटते थे कि उन पर मुझे तरस आने लगता। मैं भी उन्हें अपने घर वापस चले जाने को कहता और कहता, 'इतनी जल्दी तुम अपनी हड्डियों का दर्द कैसे भूल जाते हो, यह बात मेरी समझ में नहीं आती। तुम लोग नहीं जाओगे तो तुम्हारे माँ-बाप को जाकर बता दूंगा और उन्हें यहीं ले आऊँगा।' पर मेरी इस धमकी का भी कोई असर उन पर नहीं होता था और पतंग उड़ाने पर 'वो काटा!' चिल्लाने की अपनी चाह को वे किसी तरह मार ही नहीं पाते थे। मैं भी कभी-कभी उनके घर जूते मरम्मत कराने के बहाने चला जाता था। उन घरों की सफाई और सुघड़पन देखकर मुझे धीरे-धीरे अपने चमरियाने से नफरत होने लगी। बाँभन-ठाकुरों के लड़के गाँव के एक स्कूल में जाते थे और अपनी सचित्र पाठ्य-पुस्तकें मुझे दिखाते थे। मैं देखकर अनमना हो जाता और एक भी अक्षर न पढ़ पाने के कारण मैं रोने लगता और दोनों हाथों से अपना सिर पीटने लगता। अपनी यह दुःखगाथा मैं रात में बाबा को सुनाता और एक दिन मैंने उन्हें 'अल्टीमेटम' भी दे दिया कि यदि चार दिन के भीतर किसी स्कूल में भरती न किया गया तो मैं गाँव से अकेला भागकर शहराती स्कूल में चला जाऊँगा।"

अन्तिम वाक्य कहते-कहते भूतनाथ का गला शायद पुरानी याद से भर आया और आँखों के कोने भींग उठे।

"हाँ, तो राकेश, अपनी उस दुर्गति की दुःखगाथा तुम्हें क्या सुनाऊँ। सुनकर तुम्हारी रूह ही काँप उठेगी। मैं और मेरे घरवाले जहाँ भी जाते वहीं दुरदुराये जाते। 'जा साला चमार!' सब के मुँह से यही एक गाली सब समय सुनते-सुनते मेरे कान पक गये। एक साल हमारे अंचल में भीषण गरमी पड़ी। चारों ओर के कुँए सूख गये। चमरियाने का कुँआ जैसे किसी के शाप से इस कदर सूख गया कि पानी एकदम तले में भी नहीं रह गया। बड़ी मुश्किल से कुछ साहसी लोग बहुत प्रयत्न करने पर थोड़ा-सा पानी निकालने में सफल होते तो वह कीचड़ से भी गन्दा पानी कोई पी नहीं सकता था। पर किसी तरह चमरियानेवालों को भी जीना तो था ही। फिर भी वह चुप्पी साधकर, बड़े धैर्य के साथ गरमी का मौसम-झंझा बीत जाने तक शान्त बैठे रहे। अन्त में एक दिन हमारे चौपाल में चमारों की एक सभा हुई, जिसके अध्यक्ष मेरे बाबा थे। एक तो मौसम की गरमी, तिस पर दैवी मार की विवशता की गरमी—सभी लोग बहुत बौखलाये हुए थे। आसपास की घाटियों में छिपे रहनेवाले मुरैना के कुछ डाकू भी उस सभा में चमारों का-सा वेष बनाये पहुँचे हुए थे। इन लोगों ने बड़ी-बड़ी बातें सुनायीं। जब कोई व्यक्ति कुछ भी उपाय उस महा जल-संकट से मुक्ति का नहीं सुझा सका तब हरखू नाम का एक चमार, जो अपने स्वभाव की तेजी, अक्खड़पन और पहलवानी के लिए गाँव-भर में मशहूर था, उठ खड़ा हुआ और आवाज को बहुत ऊँचे चढ़ाकर बोला, 'हम लोग बाँभन-टोले में जबरदस्ती धावा बोल दिया करें और चाहे सिर-फुटौवल ही क्यों न हो, पानी भरकर ही दम लें। फिर चाहे वे लोग उस कुँए से पानी पीयें या ना पीयें, हमारी बला से! साले रण्डियों और डोमनियों के यहाँ जाकर दिन-रात मुजरा देखें हैं और शराब पीवें हैं और हम लोगों के छुए से उनका कुँआ अपवित्तर हो जाता है। बिना लड़ाई के घोर अभाव का यह मामला कभी हल हो नहीं सकता।' एक लाल मूँछों-वाला भी वहाँ पहुँच गया था और बीच-बीच में नारा लगा रहा था: 'चमारो! सब एक हो जाओ और मिलकर काम करो!'

दूसरे ही दिन चमारों ने बाँभन-टोले में सचमुच धावा बोल दिया और कई कनस्तर पानी भरकर ले गये।

फल वही हुआ जो होना था। दोनों तरफ से बाकायदा घमासान मच गया। दो बाँभन जान से मार डाले गये और कुछ बाँभनों ने चमरियाने में धावा बोलकर मेरे बाबा को अकेले पाकर लाठी से उनका सिर फोड़ डाला। सारे घर में कुहराम मच गया। सबसे ज्यादा चिल्लाकर रोनेवाला मैं ही था। बड़ी मुश्किल से बाबू ने और अम्मा ने मुझे समझा-बुझाकर चुप किया। वह घटना अभी तक मेरी आँखों के आगे नाचती रहती है। मेरी आँखों के आगे ही जुल्म की वह हौलनाक घटना घटित हुई थी। बाबा की मृत्यु से हमारे परिवार में शोक और दरिद्रता का कोप छा गया। बाबा की ही प्रेरणा से और उन्हीं के अनुशासन से घर के दूसरे लोग नित्य अपने-अपने काम पर सवेरे नियत समय पर जुट जाते थे और महीने में अच्छा रुपया कमा लेते थे। मेरे ताऊ, बाबू, चाचा, मामा आदि मिलकर औरों की अपेक्षा बहुत कम समय में बढ़िया किस्म के जूते तैयार कर लेते और शहर में किसी बड़ी दूकान में अच्छे दामों पर बेच आते थे। रुपया सब बाबा को ही सौंप देते। फल यह हुआ कि हम लोगों ने एक नयी झोंपड़ी बनवा ली, जिसका आधा हिस्सा पक्की फर्शवाला था और आधा खपरैल से छाया हुआ और कच्ची फर्शवाला था।

एक बार एक आर्यसमाजी बाबा हमारे गाँव में आये। वह चमरियाने के पास ही अलग एक छोटी-सी झोंपड़ी बनाकर अकेले रहते थे। मुझे दो-चार साल बाद पता चला कि वह समाजी है। समाजी लोग कौन होते हैं और उनका मत या विचार क्या है, इन सब बातों का पता मुझे बाद में पता लगा जब मैं तेरह-चौदह साल का हो गया। फिर भी मैंने देखा कि चमरियाने के सब लोग उनकी बड़ी इज्जत करते थे। उनका खाना एक चमार ही बनाता था, और वह क्या बच्चे, क्या बूढ़े, सभी से बड़े प्रेम से मिलते और बातें करते थे। मैं प्रतिदिन उन्हें शाम को चौपाल में लोगों से कहते सुनता कि 'सब मनुष्य समान हैं और भगवान् सब के एक ही हैं। ब्राह्मणों का भगवान् अलग और चमारों का अलग या हिन्दुओं का अलग और मुसलमानों का अलग नहीं होता। सारे संसार के लोग एक ही

ईश्वर की सन्तान हैं, और सभी पर उनकी कृपा-दृष्टि समान रहती है।' मेरी उम्र तब यद्यपि नौ-दस साल की रही होगी पर उनकी बातें सुनते रहना मुझे बहुत अच्छा लगता था और मेरे डरे हुए मन को बहुत बड़ा बल मिलता था। समाजी बाबा ने कुछ बरसों की कड़ी मेहनत और दौड़-धूप के बाद हमारे चमरियाने में एक प्राइमरी स्कूल खड़ा करवा दिया। पढ़ने में मेरी धुन की बात वह मेरे घर के सयाने व्यक्तियों से बराबर सुनते रहते थे। मुझे लगा कि मेरे ही लिए बाबा ने उस स्कूल की स्थापना की है और उनके प्रति मेरी भक्ति और श्रद्धा पहले से कई गुना अधिक बढ़ गयी। मैं सब समय उनके साथ लगा रहता था, जहाँ कहीं भी वह मुझे दिखाई देते मैं उन्हें भक्तिपूर्वक प्रणाम करके उनके साथ हो हो लेता और अपने बाल-मन में उठते हुए बहुत-से ऊटपटाँग प्रश्न करता रहता। बाबा बड़े धैर्य और प्रेम से मेरे प्रश्नों का उत्तर देते रहते और अपनी किसी भी बात पर कभी खीझते हुए मैंने नहीं देखा। पुस्तकों के बारे में मेरे मन में जो बचकानी कल्पनाएँ घर किये हुए थीं उन्हीं से सम्बन्धित अधिकांश प्रश्न मेरे मुँह से बिना किसी सिलसिले के निकलते रहते थे। मेरी धुन देखकर बाबा स्पष्ट ही बहुत प्रभावित हुए और एक दिन उन्होंने मुझे यह विश्वास दिलाया कि वह मुझे शहर में ले जाकर वहाँ मेरी स्कूली पढ़ाई की व्यवस्था पर ध्यान देंगे। और दूसरे ही महीने उन्होंने अपने वचन का पालन कर दिया। मैं शहर में पढ़ने लगा। ग्वालियर का वातावरण यद्यपि मेरे मन के अनुकूल नहीं बैठा, फिर भी एक नयी दुनिया का नया रंग देखकर मैं उत्साहित हो उठा। मैं बड़ी तेजी से तरक्की करने लगा। तीन बरस तक मैं बराबर डबल प्रमोशन मारता चला गया। मेरी बुद्धि तेज देखकर सभी अध्यापक मेरी ओर विशेष आकर्षित हुए और बड़े स्नेह से मुझे पढ़ाते और मेरे प्रति विशेष कृपा रखने लगे। मेरा उत्साह बढ़ता चला गया। इण्टर तक ग्वालियर में पढ़ता रहा, उसके बाद इलाहाबाद आकर विश्वविद्यालय में भरती हुआ और तुम्हारा सहपाठी बना। मुझे 'शैड्यूल्ड कास्ट' का जानकर मेरे सहपाठी मुझे अनादर की दृष्टि से देखने लगे। मैंने सोचा था कि विश्वविद्यालय के छात्र बड़ी

उदार दृष्टिवाले होंगे और मुझे दुरदुराने के वदले अधिक स्नेह और सौहार्द्र की दृष्टि से देखेंगे। पर उन्हें भी रूढ़िगत संस्कारों से जकड़ा देखकर मेरी निराशा और घुटन की सीमा न रही। एक भी सच्चा साथी वहाँ मुझे नहीं मिला। सभी मेरे प्रति अलगाव का वरताव करने लगे। स्वयं तुमने भी मेरे साथ सच्चे स्नेह और आत्मीयता से कभी वात नहीं की। सभी छात्रों की और तुम्हारी भी वातों में मुझे व्यंग्य, उपेक्षा और दवी हुई घृणा का भाव स्पष्ट दिखाई देने लगा। किसी ने यह नहीं सोचा कि 'शेड्यूल्ड कास्ट' का यह युवक छोटी कक्षा से ही कितनी विकट कठिनाइयों का सामना करता हुआ, सीढ़ी-दर-सीढ़ी आगे वढ़ता चला आया होगा और विश्वविद्यालय तक पहुँचा होगा। जिन आर्यसमाजी वावा ने अपने हृदय की महान् उदारता से प्रेरित होकर मुझे यहाँ तक आगे वढ़ने में मेरी सहायता की थी, वह वीच-वीच में मेरी कुशल और साधारण हाल-चाल जानने के लिए इलाहावाद आते रहते थे। वहुत चाहता था कि मैं भी दूसरे छात्रों की तरह किसी हॉस्टल में भरती होकर, अपने रहने और खाने के वहुत से झंझटों से मुक्त और निश्चिन्त होकर अपनी पढ़ाई में ही अपनी पूरी शक्तियों को केन्द्रित कर दूं। पर मुझे हॉस्टल में भरती करने को किसी भी हॉस्टल का कोई भी सुपरिण्टेण्डेण्ट तैयार न हुआ। सव ने यही एक कारण वताया कि मुझे भरती करने से वहुत-सी कठिनाइयाँ आ खड़ी होंगी। अन्त में अत्यन्त हताश होकर मैं तत्कालीन वाइस-चान्सलर से मिला और उन्हें अपनी कठिनाई विस्तार से वतायी। पर दुर्भाग्य से वहाँ से भी निराश होना पड़ा। पर मेरे मन में विकट विद्रोह जगने लगा और मैंने निश्चय कर लिया कि मैं सीधे चान्सलर महोदय से मिलकर उनसे वहस करूँ और झगड़ूं। और मैं जाकर मिला। वह वड़ी सहानुभूति से मुझसे मिले और उन्होंने आश्वासन दिया कि निश्चय ही मेरे लिए जल्दी ही कोई-न-कोई व्यवस्था करके ही रहेंगे। पर उनके प्रवल प्रयत्नों के वावजूद विश्वविद्यालय के अधिकारीगण कोई प्रवन्ध कर सकने में असमर्थ रहे।"

राकेश सहसा वोल उठा : 'भैया, समय वहुत हो गया। चलो, डेरे पर लौट चलें। वहीं आपकी राम-कहानी सुनूंगा। नन्दा वैसे भी घवरा

रही होगी !"

"हाँ-हाँ, ठीक है, चलो जल्दी।"—कहकर भूतनाथ उठ खड़ा हुआ। दोनों तेज डग भरते हुए डेरे की ओर चल पड़े और डेरे पर पहुँचकर राकेश ने भूतनाथ को अपने ही कमरे में एक तख्त पर बिठाया। जब वह बैठ चुके तब राकेश ने भूतनाथ से अपना किस्सा आगे बढ़ाने को कहा।

"मेरी फीस, मकान का किराया और भोजन आदि पर जो खर्चा बैठता था वह मेरे मामा कहीं से किसी-तरह जुटाकर मेरे पास भेजते थे।" भूतनाथ ने कहना शुरू किया। नन्दा भी चुपके से आकर राकेश की बगल में बैठ गयी। भूतनाथ कहता गया : "कई दिनों तक मैं जान ही नहीं पाया कि अपनी निपट गरीबी की हालत में वह कैसे प्रतिमास सौ-डेढ़ सौ रुपये मेरे लिए भेज पाते हैं। बाद में एक दिन मेरे बहुत पूछने पर उन्होंने एकान्त में बताया कि वह रुपया उन्हें शेरसिंह बाबा से मिलता था। शेरसिंह बाबा से मेरी घनिष्टता अपने बाबा की मृत्यु के बाद से ही हुई थी। एक दिन जब मैं अपने बाबा की याद में बुरी तरह रो रहा था तब मामा ने मुझे यह कहकर शान्त किया : "चलो, तुम्हें तुम्हारे दूसरे बाबा से मिलाता हूँ। उन बाबा को तुमने अभी तक नहीं देखा है। वह बहुत ही अच्छे हैं। तुम्हें बहुत याद करते हैं। तुम्हें बढ़िया-बढ़िया चीजें खिलायेंगे और नये-नये तमाशे दिखायेंगे।" उस समय मेरी आयु पाँच या छह बरस के करीब रही होगी। और मामा मुझे चार कोस दूर एक गाँव में ले गये जहाँ एक बहुत लम्बे चौड़े चरागाह में गायें और भैंसें निश्चिन्त चर रही थीं। गाँव में कच्चे मकानों और फूस की झोंपड़ियों की अपेक्षा सुन्दर-सा पक्का मकान एक घनी अमराई के बीच छिपा हुआ था। मामा मुझे वहीं ले गये। मकान के बाहर दो लम्बी-लम्बी मूँछोंवाले बन्दूकधारी पहरेदार दो तरफ खड़े थे। मामा ने दोनों की ओर मुसकराते हुए हाथ जोड़े।

'कहिए भैरवनाथजी, आज इधर भूलकर कैसे चले आये?' एक बन्दूकधारी ने पूछा।

'इस बच्चे को लाया हूँ चाचा के पास।' और फिर मामा ने उन दोनों पहरेदारों को पूरा किस्सा सुनाया—कैसे बाबा की मृत्यु हुई थी और किस तरह उनकी मृत्यु के बाद से सारे घर में शोक के बादल छा

गये हैं और दरिद्रता उत्पन्न होनेवाली विपत्ति उमड़ आयी है। मेरी अनाथ अवस्था का बड़ा ही करुण वर्णन मामा ने किया। तब मामा के उन परिचित पहरेदारों ने मामा से सीधे ऊपर जाने के लिए कहा। उन्होंने यह भी बताया कि 'भाग्य से इस समय बड़ा ही अच्छा अवसर है। सरदार इस समय फुरसत से हुक्का गुड़गुड़ा रहे हैं।' मामा मेरा हाथ थामे सीधे ऊपर ले गये। हम दोनों एक विस्तृत कमरे में जिसकी दीवारें सीताराम, शिव-पार्वती और हनुमान के चित्रों से ढँकी हुई थीं, पहुँचे। नीचे एक-से-एक बढ़िया कालीनें बिछी हुई थीं। सामने एक ऊँचे-से गावतकिये पर एक सफेद दाढ़ी-मूँछ-धारी बाबा आधे लेटे हुए बायीं ओर रखे हुए एक बड़े और मोटे से नैचे को एक मोटी झटक से गुड़गुड़ा रहे थे। नैचे के ऊपर एक पत्थर की बनी मोटी, चौड़ी और मजबूत चिलम में बड़े-बड़े अंगारे दहक रहे थे। मामा सीधे बाबा के चरणों पर गिर पड़े।

'कहो भैरवनाथ, क्या हाल हैं? यह बच्चा किसका है?' बड़े ही प्रेम-भरे स्वर में हुक्का गुड़गुड़ाते हुए नये बाबा ने मामा से पूछा।

मामा ने तत्काल रोने का नाटक रचा। हाँ, वह सचमुच नाटक ही था और फिर मेरी अनाथावस्था का लम्बा किस्सा बताना शुरू कर दिया। ऐसे अच्छे ढंग से उन्होंने सारा किस्सा सुनाया कि आज मुझे लगता है, यदि मामा पढ़े-लिखे होते तो एक बहुत ही अच्छे कहानी-लेखक के रूप में ख्यात होते। वह सारा नाटक सुनकर 'बाबा' बहुत अधिक प्रभावित हुए। मैं बच्चा होने पर भी इतना स्पष्ट देख रहा था। किस्सा समाप्त होने पर शेरसिंह बाबा बड़े प्रभावित हुए, ऐसा लगा। समवेदना से भरे गले से शब्द निकालते हुए बोले : "बच्चे को यहीं छोड़ जाओ, भैरवनाथ, और फिर उसे भूल जाओ! अब से यह बच्चा मेरी ही देख-रेख में यहीं रहेगा। इसका सारा इन्तजाम मैं कर दूँगा। यह बड़े मजे में यहाँ रहेगा और पढ़ेगा-लिखेगा भी यहीं। इसका भी सब ठीक इन्तजाम हो जायेगा। तुम अब निश्चिन्त रहो।"

मेरे 'नये बाबा' स्पष्ट ही डाकुओं के नामी सरदार थे और सारे अंचल में बहुत ही लोकप्रिय और सम्मानित थे। इस कारण कि वह उस अंचल की दीन-दुःखी जनता के हित में समय समय पर बहुत-सा रुपया

दान में देते रहते थे और दीन, दुःखी और अनाथ व्यक्तियों की परवरिश और रक्षा का भार अपने ऊपर लिये रहते थे। वे पहले ही दिन से मेरे प्रति इस कदर कृपालु हो उठे थे कि मैं अपने सगे बाबा से भी अधिक उन्हें चाहने लगा। मैं छोटा-सा बच्चा होने पर भी इस कदर संवेदनशील था कि नये बाबा की छोटी-से-छोटी हरकत और बारीक-से-बारीक मुख-मुद्रा का सही-सही अर्थ लगाने में मुझसे शायद ही कभी कोई भूल हुई हो। उनके मुख के, और विशेष करके उनकी आँखों के, साधारण-से-साधारण हाव-भाव से भी मैं इतना अनुमान लगा लेता कि वह मेरे प्रति किस कदर सहानुभूतिशील और उदार हैं। एक बार, जब मैं एक खिलौने की मोटर-गाड़ी से खेल रहा था, मैंने सुना—बाबा अपने एक अनुचर से कह रहे थे : 'देखो, देखो, यह बच्चा खेल में कैसा मगन है। इसकी आँखें बताती हैं कि यह बड़ा ही चतुर, चुस्त और चौकन्ना लड़का है। देखने में बहुत ही सुन्दर और प्यारा लगता है। तुम्हारी घरवाली मुझसे कई बार कह चुकी है कि वह इतना ही बड़ा एक बच्चा पालकर अपनी सूनी गोद भरना चाहती है। इसे तुम ले जाओ और उसकी गोद में चुपचाप रख दो। इसे देखकर और पालकर बहुत खुश होगी। ऐसा प्यारा बच्चा इस इलाके में दूसरा नहीं मिल सकता। बड़ा होने पर यह बहुत सधा हुआ वकील बनेगा और हम लोगों की ओर से अदालत में बहस करेगा। इसके खर्चों का सारा भार मेरे ऊपर रहा। तुम सिर्फ इतना ही करना कि इसे रोज एक-आधा घण्टे के लिए मेरे पास लेते आना। मैं इससे खेलूंगा।'

उसी दिन वह दूसरा आदमी, जिसका नाम दातारसिंह था, मुझे अपने यहाँ ले गया। मैं उसी के सिखाये अनुसार, उसे 'बाबू!' कहकर पुकारने लगा। जिस स्त्री की गोद में उसने मुझे लाकर रख दिया उसे मैं 'अम्मा' कहता था। उसका शील-स्वभाव इतना अच्छा और मोहक था कि उसे 'अम्मा' कहकर पुकारते हुए मेरे सारे शरीर में रोमांच हो आता था और मैं दोनों हाथों से उसका दायाँ दूध पकड़कर चूमने लगता। यद्यपि मेरे दाँत तब काफी बड़े हो चुके थे, पर इतना होश मैं सँभाल चुका था कि 'दूध' को दांतों से तनिक भी काटे बिना ही मैं बड़ी सफाई

से उसका सारा दूध पी जाता था। मुझे दूध पिलाने में उसे स्पष्ट ही बड़ा सुख मिलता था। मैं दूध गटकता जाता और वह अपने प्यार और गोरे हाथ से मेरी पीठ धीरे-धीरे थपथपाती जाती और बीच-बीच में मेरा मुँह चूमती जाती। मुझे यह सब इतना अच्छा लगता था कि आज जब उस पुरानी बात की याद आती है (वह याद अक्सर आती ही रहती है) तब मेरी पलकें भींग उठती हैं और मैं सोचता हूँ कि अपने चारों ओर के लोगों द्वारा बुरी तरह दुरदुराया जानेवाला मैं घृणित नारकीय जीव कभी इसी जीवन में स्वर्ग की सैर कर चुका हूँ और स्वर्ग सुख का भोग छककर कर चुका हूँ। कहाँ गये वे दिन! अम्मा! तुम आज कहाँ हो? इस दीन-हीन बच्चे की सुध तुम क्या कभी परलोक में भी लेती हो।" और इतना कहकर भूतनाथ राकेश और नन्दा के आगे सहसा फफक-फफककर रोने लगा! दोनों विमूढ़ भाव से उसकी ओर देखते रह गये। बहुत विचलित होने पर भी उनकी समझ ही में नहीं आता था कि उसे क्या कहकर सान्त्वना दें। दोनों नीचे की ओर आँखें करके चुपचाप तरह-तरह के विचारों में खोये रहे। नन्दा तो अपनी साड़ी के आँचल से चुपचाप दोनों आँखें बेमालूम ढंग से पोंछती रही। उसे लग रहा था, जैसे वह भूतलोक और परीलोक की कोई लोमहर्षक कहानी सुन रही थी।

भूतनाथ उसी रौ में कहता चला गया : "—हाँ, तो राकेश, मेरे घोर दुर्गतिपूर्ण जीवन की कहानी जिस हद तक तुम सुन चुके हो, उतने से तुम इतना तो निश्चय ही समझ चुके होगे कि मेरी कहानी असाधारण और रोमांचक होने पर भी किसी के भी मन में सहानुभूति की एक हल्की सी साँस भी भर सकने में समर्थ नहीं है। फिर भी अपनी नयी अम्मा की गोद में जो क्षणिक जीवन मैंने बिताया था उसका कण-मात्र आभास भी तुम्हें कहानी-कला की किसी भी चातुरी से नहीं दिया जा सकता—यह सम्भव ही नहीं है। पर, अपनी निपट अबोध अवस्था की उतनी-सी स्मृति भी मेरे लिए अनन्तकालीन नरक की यात्रा के लिए पर्याप्त से अधिक सम्बल है। उस एक साधारण से सम्बल से मैं असंख्य पौराणिक स्वर्ग की सारी विभूतियाँ खरीद सकता हूँ, पर खरीदना नहीं चाहता—

यदि यह किसी चमत्कार से सम्भव भी हो जाय, तो भी नहीं ! उसी के कारण मैं अब निपट यथार्थ तथ्य की घोषणा सारी दुनिया के आगे हिमालय की ऊँची चोटी पार कर सकने का साहस अपने भीतर पा रहा हूँ कि "ऐ दुनियावालो ! इस नरक के कीड़े को तुम कभी कुचल नहीं पाओगे, क्योंकि जिस स्वर्ग की छिटपुट झांकियाँ मैं देख चुका हूँ उनसे मैंने मानवीय संवेदना की ऐसी अपराजेय शक्ति प्राप्त कर ली है कि तुम्हारी बड़ी-से-बड़ी शैतानी शक्ति मुझे अन्तिम रूप से कुचलने और मसलने में कभी सफल न हो सकेगी।—मैं तुम सब को चुनौती देता हूँ, आकर परख लो।"—और यह कहते हुए भूतनाथ का मुखमण्डल एक ऐसे आवेश की अभौतिक चमक से खिल उठा, जो इस सारे घिनौने संसार की नारकीयता को अपूर्व महिमा से मण्डित करने में सक्षम था ! राकेश और नन्दा अपनी-अपनी बायीं आँख के कोनों से उस आभामण्डल को देखकर अपने व्यर्थ जीवन को धन्य महसूस करने लगे थे।

"अपनी नयी माँ और नये पिता के स्नेह-सम्पर्क में आने पर मैं अपने जन्म से ही प्राप्त माता-पिता को धीरे-धीरे भूलता चला गया। यहाँ तक कि जल्दी ही वह दिन आया जब मुझे अपने पिछले माँ-बाप की कोई स्मृति ही मेरे मन में न रही। यह ठीक है कि मेरे नये पिता स्पष्ट ही पेशे से डाकू थे और डाकू-सम्प्रदाय में उनकी विशेष ख्याति और मान था। यह भी सच है कि बचपन से ही डाकू-सम्प्रदाय का बहुत भारी आतंक मेरे निर्गुण सम्प्रदाय में पले हुए मन पर पड़ा हुआ था। डाकुओं को मैं पौराणिक कहानियों में वर्णित नर-मांस-भक्षी राक्षसों के ही वंशधर मानता था। उनकी निष्ठुरता की कल्पना इस हद तक मेरे मन में बसी हुई थी कि उनकी चर्चा उठते ही मैं पतझड़ में पीपल के पेड़ पर हवा से बुरी तरह काँपते रहनेवाले अकेले पत्ते की तरह—निराधार भ्रमित होकर विकट संत्रास से विकल हो उठता था। पर जब मैंने अपने प्रत्यक्ष अनुभव से देखा कि माया-ममता में डाकू और डाकू की पत्नी दोनों किसी उच्चवर्गीय, सुसंस्कृत मनुष्य से कम नहीं, बल्कि और विशेष हैं, तब मेरी भ्रमित आँखें चकित रह गयीं, जैसे जन्मजात अन्धे ने दिव्य दृष्टि पा ली हो ! मैंने देखा—मनुष्यों के बाह्य संस्कारों में चाहे जमीन-

आसमान का अन्तर क्यों न हो, पर स्नेह, दया और ममता की दुनिया में सब समान हैं। सभी एक अवर्णनीय और अनिर्वचनीय मातृ-शक्ति के स्नेहामृत से पूर्ण अपूर्ण करुणा-धारा से निरन्तर अभिषिक्त होते रहते हैं। समग्र भौतिक सृष्टि के अन्तर में निहित मौलिक एकता का पाठ ऐसे सहज रूप में मुझे भाग्य ने सिखा दिया कि मैं केवल देखता और अनुभव करता ही रह गया।

"तुम्हें अपने जीवन का एक और रहस्य बताऊँ राकेश, चौंकना मत! अच्छी प्रकार मनन करके, मन को साधारण सांसारिक धरातल से बहुत ऊँचा उठाकर, महा-मानवीय संवेदना से उस पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना। वैसे तो मेरा जीवन ही रहस्यमयी घटनाओं का जाल है। पर, जिस रहस्य का वर्णन मैं अब तुम्हारे आगे करने जा रहा हूँ, वह तुम्हें निश्चय ही अद्भुत लगेगा।"

इतना कहकर भूतनाथ क्षण-भर के लिए रुक गया, जैसे मौन भाव से कुछ गहन चिन्तन करना चाहता हो, इस ढंग से उसने अपनी दो गम्भीर भावपूर्ण सुन्दर आँखों को आधा मीच लिया।

राकेश को लगा, जैसे भूतनाथ थक गया हो और उसे नींद दबाने लगी हो। वह स्वयं अपने को नींद के वश में पा रहा था। उसने नन्दा की ओर देखा, वह तो बैठे-बैठे, अपने घुटनों पर सिर रखे सचमुच सो गयी थी। देखकर राकेश बोला: "भैया, अब रात बहुत हो गयी है। अब आज आराम करें हम लोग। कल रात फिर बैठेंगे और तुम्हारे जीवन के विचित्र रहस्यों का उद्घाटन होते सुनूंगा—बड़े ही प्रेम, श्रद्धा और एकान्त ध्यान से।"

"क्या बजा है तुम्हारी घड़ी में?" भूतनाथ ने पूछा।

अपनी कलाई में बँधी घड़ी पर नजर डालकर राकेश ने कहा। "बारह बजने को केवल दस मिनट बाकी रह गये हैं।"

"तब तो सचमुच काफी समय हो गया है। तुम लोग सोओ, बाहर के कमरे में जाकर मैं भी अब सो जाऊँगा।"

"अच्छा तो कल तक के लिए नमस्कार! बहू की तबीयत ठीक नहीं है। सचमुच मुझसे बड़ा अन्याय हो गया।"

"हम लोग क्यों फँसेंगे ? फँसना होगा तो वही फँसेंगे।"

"तुम मेरा आशय समझे नहीं !"

"क्या है तुम्हारा आशय, समझाओ। स्पष्ट शब्दों में।"

"मैं यह कहना चाहती थी कि इन महाशय ने जिस चक्कर में हमें फँसा दिया है, उसका कोई उपाय अब नहीं है।"

"क्या है वह चक्कर ?"

"अरे, हम लोग एक चमार के हाथ का खाना खा चुके हैं, पानी पी चुके—अब क्या बाकी रह गया ?"

राकेश को बरबस हँसी आ गयी। पर हँसी का पहला आवेग समाप्त होते ही वह जैसे किसी एक गम्भीर चिन्ता में मग्न हो गया।

"चुप क्यों हो गए ?" नन्दा ने उसे कोंचते हुए पूछा।

"अब बताते क्यों नहीं कि इस स्थिति से उबरने का क्या उपाय हो सकता है ?"

"मैं क्या बताऊँ ?" राकेश तनिक खीझकर बोला। "उपाय एक ही हो सकता है। किसी पण्डितजी को पकड़कर प्रायश्चित कर लो !"

"अब क्या प्रायश्चित हो सकता है ?"

"तब चुपचाप जो-जो तमाशे जीवन का फिल्मी-जाल तुम्हें दिखाता जाता है उन्हें देखते और, फिलहाल सहन करते जाओ—आखिर कोई-न-कोई रास्ता अपने-आप निकल ही आयेगा।"

राकेश यों ही दो-तीन दिन से अपनी ही चिन्ताओं से परेशान था। उसने नहीं सोचा था कि नन्दा भूतनाथ की जातिगत वास्तविकता की बात सुनकर इस कदर बौखला उठेगी और सचमुच में सारी रात का आराम हराम कर देगी।

भूतनाथ ने कैसा ठीक अनुमान लगा लिया था हमारी रात का, जब उसने कहा था कि "तुम दोनों को रात-भर परेशान करने के लिए इतनी ही बातें पर्याप्त हैं !"

दो-एक मिनट तक चुप रहने के बाद नन्दा ने अचानक फिर कोंचना शुरू कर दिया, "बड़ा ही विचित्र आदमी है तुम्हारा यह पूर्व सहपाठी !"

"विचित्र ?" राकेश ने प्रायः चौंकते हुए कहा—"वह विचित्र ही

नहीं, इस कदर अपरिचित है कि तुम्हें यदि उसके जीवन के रहस्यों के चौथे हिस्से का भी आभास मिल जाय तो तुम्हारा माथा इस हद तक चकरा उठेगा कि तुम नाचने लगोगी। हाँ, वह सचमुच का भूत है, मुझे बात का पूरा विश्वास हो गया है और यह विश्वास दिन-पर-दिन और अधिक स्पष्ट होता जा रहा है कि वह सचमुच का भूत है। यह ठीक है कि उसकी बातों से उसके भूत होने का तनिक भी आभास नहीं मिलता। मैं इस भूत को यदि जल्दी ही उसके भाग्योचित भविष्य तक—उसकी न्यायोचित नियति तक—न पहुँचा दूँ तो कहना...!"

"क्या है उसकी न्यायोचित नियति ?" तनिक काँपती हुई-सी आवाज में नन्दा ने पूछा। उसे यह शंका होने लगी थी कि कहीं राकेश ताव खाकर एक नये अनर्थ का सूत्रपात्र न कर बैठे, जो न तो उसके अपने लिए, न स्वयं नन्दा के लिए और न ही भूतनाथ के लिए हितकारी होगा।

"वह न्यायोचित नियति यह है कि उसके रहस्यमय भूत-जीवन की ओर सब का ध्यान गम्भीर रूप से आकर्षित करके उसे एक ऐसी काल-कोठरी की हवा खिलायी जाय जहाँ असंख्य शारीरिक कष्टों और मानसिक यातनाओं के अनुभव से उसकी सारी भूतगिरी उसके माथे के छिद्रों से बाहर निकल जाय और उनका सारा बनावटी पागलपन रफू हो जाय। जब तक हम ऐसा नहीं करते तब तक इस मकान में हमें एक पल के लिए भी चैन नहीं मिल सकता। बड़ी परेशानियों के बाद जो इतना सुन्दर मकान हमें मिला है—उसे मैं यों ही हाथ से नहीं जाने दूँगा। पर जब तक यह इस मकान में रहेगा तब तक हम दोनों को चैन न मिलेगा। चैन की बात तो दूर रही, निकट भविष्य में हमारे लिए किन्हीं भयंकर और अनिश्चित खतरों के भँवर में फँस जाने का बहुत बड़ा अन्देशा है, यह बात मैं बहुत सोचने-समझने के बाद तुमसे कह रहा हूँ। इसने जो दो-दो, ढाई-ढाई हजार रुपयों की एक गड्डी तुम्हें और एक मुझे दी है, उसी चुग्गे से वह हम दोनों को फँसाकर स्वयं निर्दोष बना रहना चाहता है। इसलिए जब तक वह हमें फँसाने की बात सोचे तब तक हमें सावधान और सक्रिय होकर उलटे उसे ही काल-कोठरी में भरती करा देना चाहिए। मैं बहुत सोचने-विचारने के बाद अन्त में इसी निश्चित

निर्णय पर पहुँचा हूँ ! तुम्हारी क्या राय है ?"

नन्दा राकेश की बातें सुनकर अत्यन्त आतंकित हो उठी थी। वह घबराये हुए स्वर में बोली : "भूलकर भी ऐसा न करना। इस भूत से (यदि वह सचमुच भूत ही है तो !) तुम कभी पार नहीं पा सकोगे। उसके विरुद्ध किसी भी कार्रवाई के लिए तुम कदम उठाओगे तो वह उसके पहले ही हम लोगों को ऐसे अनजाने चक्कर में डाल देगा जिससे हमें जीवन-भर पछताते रहना होगा। और, यदि ईमानदारी से सोचो तो वह हम लोगों का कोई अनिष्ट करने के बजाय हमारी भलाई की ही बात सोचता रहता है ! जो रुपया उसने तुम्हें और मुझे दिया है वह हमें किसी चक्कर में फँसाने के लिए नहीं, वरन घोर आर्थिक संकट से हमें उबारने के उद्देश्य से ही उसने ऐसा किया है। कम-से-कम मुझे तो यही लगता है। उसकी भलाई का बदला तुम उसे विपत्ति-जाल में फँसाकर लेना चाहते हो ? खबरदार ! अभी और देख लो और सोच लो।"

"मैंने खूब विचार कर लिया है, नन्दा, मुझे पूरा विश्वास हो चुका है कि यदि वह भूत (या मनुष्य ही सही) कुछ दिन और हमारे साथ रहेगा तो मैं निश्चय ही पागल हो जाऊंगा।"



दूसरे दिन जब तीनों सन्ध्या के समय [illegible] से निबट चुकने के बाद राकेश के कमरे में नित्य विश्राम करने के लिए इकट्ठे हुए तब राकेश ने [illegible] से कहा : "भैया, [illegible]

करो। तुम्हारी रामकहानी भी किसी [illegible]
कम आकर्षक नहीं है।"

"कल हम लोग कहाँ तक पहुँचे थे?" भूतनाथ ने तनिक उदासीनता के साथ पूछा।

"अपने नये पिता और नयी माँ के स्नेह-सम्पर्क में आने पर तुमने मानवीय दया-माया के सम्बन्ध में क्या नया पाठ सीखा, यही बताकर तुमने अपनी रामकहानी समाप्त कर दी थी और फिर इस बात का वचन दिया था कि तुम अपने जीवन की एक और रोचक और रहस्यपूर्ण घटना का किस्सा सुनाओगे। आज हम वही सुनने के लिए उत्सुक हैं।"

"ओह, अच्छा! ठीक है, तब सुनो। पर चौंकना मत!"

"चौंकेंगे क्यों?" राकेश ने कहा।

राकेश का बेमतलब का प्रश्न सुनकर भूतनाथ जैसे खीझ उठा। तनिक तमककर बोला: "कल जब तुम मुझसे एक अदना-सी सूचना पाकर बेतरह भड़क उठे थे, तब आज जो किस्सा सुनाऊँगा, उसे सुनकर या तो मकान छोड़कर ही भाग जाओगे या स्वयं मुझे मार भगाने पर आमादा हो जाओगे!"

"यह क्या कहते हो भैया, आखिर ऐसी कौन-सी असाधारण सूचना तुम आज हमें देने जा रहे हो? फिर, तुमने यह कैसे जान लिया कि कल हम तुम्हारी किसी भी सूचना से भड़क उठे थे!"

"मुझसे किसी भी व्यक्ति के मन के भीतर के गहन-से-गहन रहस्य भी छिप नहीं पाते, फिर तुम्हारे मन की प्रतिक्रिया तो तुम्हारे चेहरे पर इतनी साफ झलक उठती है कि कोई बड़ा-से-बड़ा बीहड़ मूर्ख भी उसे पढ़ सकता है। जब मैंने तुम्हें यह बताया कि मेरा जन्म एक चमार के घर में हुआ है, तब तुम चौंके थे या नहीं—सच बताओ!" आदेश के स्वर में भूतनाथ ने तनिक कड़क के साथ कहा।

"थोड़ा चौंका अवश्य था,"—राकेश घबराहट में बोल उठा। "पर उसका कारण केवल इतना ही था कि तुम्हारे सारे संस्कार मुझे बराबर एक कुलीन ब्राह्मण के-से लगते रहे, पर जब तुम्हारी बात से मेरी वह धारणा भ्रामक सिद्ध हुई तब मेरा चौंकना स्वाभाविक था। मेरे उस

के पेट से बड़े थे, जिनके दाढ़ विराट विश्वरूपधारी कृष्ण के सर्वभक्षी महद्दन्तों के समान थे और जिनके पंजे छिपकलियों के पंजों के आकार के होते हुए भी बड़े ही खूँखार थे। और जब प्रकृति ने देखा कि उन दानवीय जीवों का अहम् निरन्तर फूलता हुआ इस सीमा को पहुँचता जा रहा है कि समस्त जीव-सृष्टि को ही लीलकर और भूत-सृष्टि की निरन्तर प्रगति की रास को ही तोड़कर कच्छपावतार की तरह बने रहने की योजना बना रहा है, तब उसने (मूल प्रकृति ने) बड़ी चतुराई से एक नये नियम की सृष्टि की। उससे महाभण्डार में चतुराई-भरे नियमों की कोई कमी कभी नहीं रही। इसलिए उसने उन महादम्भी प्राणियों के विनाश के कुछ विचित्र ही उपाय खोज निकाले। प्रकृति यदि चाहती तो उन महादानवीय जीवों से भी वृहत्तर जीवों की सृष्टि करके उनका समूल विनाश कर सकती थी, पर उसने उनके विनाश की एक दूसरी ही योजना बनायी। उसने ऐसे ऐसे अदृश्य और विषैले कीटाणुओं की सृष्टि की जो उन महाशक्तिशाली और महादम्भी जीवों को भीतर से खोखला करने लगे। साथ ही प्रकृति ने पृथ्वी के वातावरण में बहुत-सी तब्दीलियां कीं, जो उन महाजीवों को माफिक नहीं आयीं। फलस्वरूप उन महाजीवों के महाविनाश का क्रम आरम्भ हो गया और नये प्रगति-शील जीवों के विकास के लिए रास्ता खुल गया......"

इस बीच राकेश भूतनाथ के लम्बे भाषण से 'बोर' हो चुका था। अब भूतनाथ बीच में कुछ रुका तब राकेश साहस करके बोल ही उठा: "क्या यही वह बात थी जिससे तुम मुझे चौंकाना चाहते थे? यह जाने रहो कि मैं विश्वविद्यालय में जीवशास्त्र का विधार्थी रह चुका हूँ और इस रोचक विषय के विज्ञान का अध्ययन भी मैंने बड़े प्रेम से किया है। इसलिए तुम्हारी व्याख्या कुछ अधिक रोचक होने पर भी मैं उससे तनिक भी नहीं चौंका हूँ!"

भूतनाथ रात के उस सन्नाटे में सहसा बड़े जोर से ठहाका मारकर ठठाया।

जब ठहाके की अन्तिम गूँज भी कमरे की दीवारों से टकराकर अन्त में उन्हीं में विलीन होकर शान्त हो गयी, तब भूतनाथ गरजकर

बोला : "तुम गधे हो !"

"हाँ, हूँ तो ! पर इससे क्या हुआ ? तुम अपनी बात स्पष्ट करो !"

भूतनाथ जैसे बरबस निकलते हुए एक और ठहाके के वेग को दबाता हुआ बोला : "तुमने यह खूब समझ लिया कि मैं तुम्हें जीवविज्ञान सम्बन्धी एक लेक्चर पिलाकर चौंकाना चाहता था। अरे मूर्ख, तुम इतनी-सी बात भी नहीं समझ पाये कि यह रूपक मैंने तुम्हें क्या बात बताने के लिए बाँधा है !"

"तुम ठीक कहते हो, मैं तुम्हारा उद्देश्य अभी तक तनिक भी नहीं समझ पाया हूँ।"

"तो सुनो और समझो ! मैं तुम्हारी मोटी अक्ल के भीतर, जिसके ऊपर की झिल्ली उन आदिकालीन जीवों की दुर्भेद्य चमड़ी से भी मोटी है, यह बात 'इनजेक्ट' करना चाहता हूँ कि तुम्हारे समान महाब्राह्मणों के भीतर हजारों वर्षों से जो यह धारणा जमी हुई है कि तुम्हारी ही जाति को विधाता ने बल, बुद्धि, विद्या, ज्ञान और पौरुष में सर्वश्रेष्ठ बनाया है और वह विधि-प्रदत्त श्रेष्ठता अनन्तकाल तक वैसी ही बनी रहेगी, यह एक महाभ्रम है, जिसे प्रकृति तोड़-तोड़कर एक दिन चकनाचूर किये बिना नहीं रहेगी। और वह दिन बड़ी तेजी से आ रहा है—प्रायः आ ही पहुँचा है, समझो ! मेरे समान तीव्र संवेदनशील 'अछूत' अब अधिक समय तक तुम-जैसे तथाकथित ब्राह्मणों की घृणा, अवज्ञा और अवमानना अधिक समय तक चुपचाप सहते रहते नहीं पाये जायेंगे। इस कटु सत्य के 'अप्रिय' धक्के की आकस्मिकता से अपनी सुरक्षा के लिए अभी से तैयार हो जाओ और वास्तविकता के प्रति आँखें मूँदे न रहो—मैं इस समय तुमसे केवल इतना ही कहना चाहता हूँ। पर याद रखो, यह बात भी वह नहीं है, जिसके लिए मैंने सावधान किया था कि सुनकर चौंकना मत।"

"अच्छा, भैया, अब जल्दी ही वह चौंकानेवाली बात भी कह ही डालो ! अब अधिक 'सस्पेन्स' में पड़े न रहने दो !"

"तो जिगर थाम के सुनो—और कान खोलकर भी !"

"इतना विश्वास तो तुम्हें हो ही चुका होगा कि मैं बीस बिस्वा अछूत हूँ या 'हरिजन' ही क्यों न कह लो मुझे ! अपने जीवन की दर्दभरी दास्तान सुनाकर मैंने तुम्हारे हृदय को अवश्य ही कहीं-न-कहीं छुआ ही होगा, क्योंकि सब-कुछ के बावजूद तुम एक तथाकथित कवि तो हो ही पर यह बात तुम नहीं जानते कि मैं केवल बीस बिस्वा ही अछूत नहीं हूँ—मैं कम-से-कम इक्कीस बिस्वा हरिजनों की एक नयी ही किस्म हूँ।

"बस भैया, कृपा करके आज इस तरह की कोई बात विस्तार से आगे न बढ़ाओ, मैं तुम्हारे पाँव पड़ता हूँ। लाओ अपने पाँव मेरी ओर बढ़ाओ !" यह कहकर राकेश अपने दोनों हाथ भूतनाथ के पाँव की ओर बढ़ाये रहा।

"अरे यह क्या करते हो ? कृपा करके अपने हाथों को अब अधिक आगे न बढ़ाना। जिस प्रकार तुम महाब्राह्मण हो, उसी प्रकार मैं महा-अछूत हूँ। अभी तुम्हें मेरे अछूतपन की सीमा का कोई भान नहीं है। मेरे पाँव छूकर अपने को अब अधिक पाप के गड्ढे में मत डुबाओ ! ठहरो ! पीछे हट जाओ ! मुझमें अभी तक इतनी दुर्बलता शेष है कि मैं एक महा-ब्राह्मण-दम्पति की तथाकथित 'धार्मिक हत्या' इस हद तक अपनी आँखों से नहीं देख पाऊँगा।"

"अरे भैया, अब अधिक न बनाओ ! मेरे प्रति दया करो। हम दोनों के प्रति तुम्हारी वह पिछली ममता कहाँ खोयी जा रही है ?"

"मेरी ममता तुम दोनों के प्रति अभी रत्ती-भर भी नष्ट नहीं हुई है। पर, माफ करना, तुम दोनों स्वभाव से ही ऐसे हीन, तुच्छ और नगण्य जीव हो कि मुझे कल्पनातीत रूप से दयनीय लगते हो और मेरा क्रोध और अभिशाप सहन करने की शक्ति तनिक भी नहीं रखते। इसीलिए मैं तुम दोनों से अनुरोध करता हूँ कि जल्द से जल्द तुम इस भुतहा मकान को छोड़कर चले जाओ—यदि अपनी तनिक भी सुरक्षा चाहते हो तो !"

इतना कहकर भूतनाथ उसी आवेश में सहसा उठ खड़ा हुआ और पीछेवाले कमरे से बाहर चला गया।



दूसरे दिन तीसरे पहर जब राकेश रात की अधूरी नींद को पूरा करने के बाद आँखें खोलकर उन्हें दोनों हथेलियों से मल ही रहा था कि सहसा दरवाजा खटखटाये जाने का शब्द सुनकर हड़बड़ाता हुआ उठा। दरवाजा खोलते ही उसने देखा कि भूतनाथ दोनों हाथों में दो दोनों में ढेर-सी मिठाई और नमकीन लिये खड़ा था।

"यह सब किसलिए लाये हो भूतनाथ ?" राकेश तनिक कड़कते हुए स्वर में बोला।

"कुछ नहीं। चाय का समय हो चुका है, सोचकर मैं बाजार से नाश्ते का सामान ले आया हूँ।"

राकेश ने इस तरह मुँह बिचकाया जैसे जमीन पर रेंगता हुआ कोई घृणित साँप सहसा पूँछ के बल खड़ा हो उठा हो—वह सहमकर दो कदम पीछे की ओर हट गया।

"अच्छा, तुम अभी अपने कमरे में जाकर बैठो। अभी चाय बनानी है। चाय बन जाने पर मैं तुम्हें बुला लूँगा।"

"चाय का पानी भी मैं चढ़ा चुका हूँ, केतली में। पानी खौलने लगा है। सिर्फ पत्तियाँ डालनी शेष हैं।"

"ओफ्फोह ! तुम बड़े वो हो भूतनाथ ! इतनी जल्दी तुम्हें क्या पड़ी थी, चाय का पानी चढ़ाने की ! यह काम मैं या नन्दा करते ही आ रहे थे। लगता है, जैसे तुम जानबूझकर हम को डिस्टर्ब करने पर तुले बैठे हो।"

राकेश का तेवर बदला हुआ था और आज उसका स्वर भी निर्मम

था—और दिनों की तरह संकोच से जड़ या दबा नहीं। भूतनाथ जैसे सब-कुछ ताड़ गया था।

"बात क्या है, राकेश? आज एक नये तेवर से क्यों बोल रहे हो? साफ-साफ क्यों नहीं कहते कि मेरे हाथ की न तो तुम चाय पीना चाहते हो, न मेरी छुई कोई चीज ही खाना चाहते हो!"

"नहीं भैया, ऐसी बात नहीं है। बड़े भाग्य से ही तुम्हारे हाथ की कोई चीज किसी बड़े पुण्यात्मा को ही प्राप्त हो सकती है। हम दोनों ने जब से तुम्हारे हाथ से प्रसाद पाया है तब से एक अद्‌भुत शक्ति दोनों के मन में छा गयी है। हमें भरपूर अपनी सेवा का अवसर दो, भैया! हमसे नाराज न हो—हम मूर्खों की बड़ी-से-बड़ी भूल को भी क्षमा कर दिया करो।"

भूतनाथ देख रहा था कि एक वास्तविक श्रद्धा का भाव उस समय राकेश के मुँह पर छाया हुआ था। कुछ देर तक वह राकेश को और गौर से देखता रहा। फिर सहसा एक स्निग्ध-मधुर हास्य उसके चेहरे पर खिल उठा जो तुरन्त ही एक विकट अट्‌टहास में बदल गया।

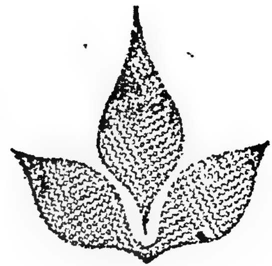
नन्दा कमरे के कोनेवाले पलंग पर लेटी हुई थी। अट्टहास की विकट गूँज सुनकर वह जगी और तत्काल उठ बैठी। राकेश बोला: "नन्दा, उठो और भैया के लिए फौरन चाय तैयार करो।"

"अकेले भैया के लिए क्यों? सब के लिए क्यों नहीं?" भूतनाथ ने पूछा।

"हँ-हँ-हँ। आज एकादशी है भैया! इस दिन हम लोग दिन-भर का व्रत रखते हैं। रात में ही मुँह में पानी डालते हैं।"

भूतनाथ ने फिर अट्‌टहास किया, जो दिन-दहाड़े ही उस सुनसान मकान में किसी धीर का भी दिल दहलाने को पर्याप्त था, फिर राकेश और नन्दा तो स्वभाव से ही हौलदिल और भीरु थे। दोनों एक अज्ञात भय से काँप उठे।

"अच्छा, मुझे किसी काम से बाहर जाना है, वहीं चाय भी पी लूँगा। आज से मैं भी एकादशी रखूँगा! हँ-हँ-हँ!" कहकर भूतनाथ लौट चला। जीने से उतरकर बाहर निकल गया। दरवाजे से ही हाँक



भूतनाथ के बाहर निकल जाने पर राकेश ने दरवाजा वन्द किया और ऊपर आकर नन्दा को जगाया, जो अभी तक पलंग पर लेटे-लेटे अलसा रही थी।

"क्या बात हुई तुम दोनों के बीच ?" नन्दा ने लेटे-लेटे पूछा।

"कुछ नहीं, बाजार से कुछ मिठाई और नमकीन ले आये थे जनाव। मैंने कह दिया चमार से कि आज हम लोग व्रत मना रहे हैं, कुछ खायेंगे नहीं। वह खुद ही चाय भी वनाने जा रहा था।"

"वाप रे ! तुमने ठीक ही किया जो चालाकी से उन्हें भगा दिया। अब यह वताओ कि हम लोग अव जायें कहाँ ? कोई नया मकान ढूंढ़ना होगा। यहाँ तो अब एक दिन भी नहीं कट सकता। कल रात वह खुद भी हम लोगों से चले जाने को कह रहे थे।"

"उसके कहने से क्या होता है ?" राकेश तमककर बोल उठा। "उसका भण्डाफोड़ जल्दी ही कर देना होगा, वरना वह सचमुच हम लोगों का यहाँ रहना दूभर कर देगा।"

"अव दूसरे लोग भी उनकी बनावटी भूतवाजी से परिचित हो चुके हैं," एक लम्वी जम्हाई लेते हुए नन्दा ने कहा। वह उठ बैठी थी।

"तुम्हें कैसे मालूम ?"

"नन्दा ने उस दिन टेलीफोन पर जो वातें सुनी थीं, उससे सम्वन्धित

सारा किस्सा बता दिया।

"मैं तो पहले ही दिन ताड़ गया था कि वह इस मकान में स्थायी रूप से कब्जा जमाने के लिए ये सब बनावटी काण्ड कर रहा है।"

"ठीक है," नन्दा ने धीमी आवाज में कहा, "पर अब समस्या का हल कैसे होगा?"

"वह सब मैंने सोच लिया है। अभी तुम दो-चार दिन मौन साधे बैठी-लेटी रहो।"

"हाय भगवान्, मैंने कभी भी कल्पना नहीं की थी कि हम दोनों की प्रेम-यात्रा के आरम्भ में ही ऐसी अनहोनी घटना एक महाविघ्न के रूप में हमारी अग्नि-परीक्षा लेने आ खड़ी होगी। अभी तक हम लोग धार्मिक और सामाजिक खानापूरी के उद्देश्य से झूठ-मूठ का विवाह-उत्सव भी नहीं मना पाये हैं। क्या सोचा था और क्या हो गया! अम्मा और बाबूजी कलपते हुए हमें अभिशाप दे रहे होंगे। उन्हीं का अभिशाप फल रहा है। भगवान्! मेरे सब अपराध क्षमा करो। इस महासंकट से किसी तरह बचाओ, भगवान फिर कभी ऐसा अपराध नहीं करूँगी—इस जन्म में कभी नहीं!"

"क्या हो गया तुम्हें नन्दा? किस अपराध की बात तुम कह रही हो?"

"तुम्हारे समान अक्षम और कायर प्रेमी के साथ भाग निकलने का अपराध, और क्या?"

"ओह!" मुँह विचकाते हुए राकेश ने कहा। "मैं सोच रहा था कि एक चमार के घर पर रहने और उसका छुआ खाने के अपराध की बात सोच रही हो।"

"मेरे लिए अब सभी चमार सिद्ध हो रहे हैं।" एक लम्बी साँस लेकर धीमे स्वर में नन्दा ने कहा। "यह चमार तो मुझे दूसरे लोगों की तुलना में बहुत बड़ा सन्त लग रहा है। एक सामर्थ्यहीन और कायर ब्राह्मण कवि की तुलना में वह देवता है। वही मेरे उद्धार का कोई रास्ता निकाल सकता है, तुम नहीं! इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि हम उसे भड़काने और उसके विनाश की कोई योजना बनाने के

राकेश की घबराहट एक क्षण में गायब हो गयी "अब यही देखो, तुम्हारे हँसने से आधा से अधिक संकट रफू-चक्कर हुआ कि नहीं ?"

अब नन्दा खुलकर, ठठाकर हँस पड़ी।

"बड़े वैसे हो !" उसने मुस्कराहट के भीतर से ही राकेश की ओर दोनों आँखों के मधुर कटाक्ष के संकेत के साथ कहा।

"वाह, नन्दा वाह ! तुम सचमुच बहुत प्यारी हो।" कहकर राकेश आवेग में नन्दा के दायें हाथ की उँगली पकड़कर अपने पान रचे हुए होंठों के पास ले गया और उस उँगली को बड़े प्रेम से चूमकर उसे बच्चों की तरह चूसने लगा।

"वाह, बड़ी मीठी खुशबू आ रही है तुम्हारी उँगली से। जी चाहता है कि जीवन-भर इसे इसी तरह चूसता ही रहूँ ?"

"छोड़ो, मुझे दर्द हो रहा है। तुमने तो इसे काटना भी शुरू कर दिया। इतने संकटों के बीच में इस तरह के बचकाने खेल अच्छे नहीं लगते।"

"किस संकट की बात कर रही हो ! सारा संकट तो तुम्हारा वहम है।"

बाहर से किसी ने दरवाजा खटखटाना शुरू कर दिया था।

"कौन है ?" राकेश बोला।

"अरे भाई, तनिक खोलो। मैं हूँ भूतनाथ।"

"यह लो, फिर सवेरे-सवेरे ही वह भूत आ पहुँचा। अब सारा दिन खराब जायेगा।"

वह काफी ऊँची आवाज में बोल रहा था। नन्दा अपनी हथेली को अपने मुँह तक ले गयी और राकेश से चुप रहने का संकेत करने लगी।

"अरे, अब कहाँ तक चुप रहेंगे। एक दिन साफ बात कहनी ही पड़ेगी। तब अभी से संकेत क्यों न दे दें ?"

"खोलो भाई, अभी तक पलंग से उठे ही नहीं क्या ?" बाहर से भूतनाथ बोला।

"खोलता हूँ !" कहकर राकेश हड़बड़ाता हुआ दरवाजे की ओर बढ़ा और उसने खट से दरवाजा खोल दिया।

नन्दा ने चुटकियों में साड़ी ठीक से सिर के आगे की ओर खींच ली और सारे शरीर में लपेट ली। ऊपर से शाल लपेटकर वह उठ बैठी।

एक बड़ा-सा ठोंगा हाथ में लेकर भूतनाथ ने भीतर प्रवेश किया।

"बाप रे!" राकेश के मुंह से बरबस निकल पड़ा। "यह क्या है!"

"अरे गरमागरम जलेबियाँ लाया हूँ। तुम लोगों को इतनी देर तक बाहर न निकलते देखकर मैं घबरा गया था कि बहू की तबीयत कहीं फिर खराब न हो गयी हो। लो बैठो और छककर जलेबियाँ खाओ। पूरा एक किलो लाया हूँ—एक किलो। आज आखिरी बार मेरा छुआ खा लो। कल से तुम महाब्राह्मणों से सारा सम्बन्ध समाप्त!"

"क्यों, ऐसी क्या खता हमसे हो गयी, भैया, जो सारा सम्बन्ध ही समाप्त करने पर तुले हो?"

"इतने दिनों तक तुम लोगो के सम्पर्क में रहकर तुम्हारा धर्म ही बरबस भ्रष्ट करता रहा हूँ। इस पाप का प्रायश्चित्त मुझे करना होगा। मेरा अक्षम्य अपराध क्षमा कर दो, भैया!"

पास ही एक तिपाई पर भूतनाथ ने ठोंगा रख दिया और जो एक टूटी-सी कुरसी कमरे के एक कोने में पड़ी थी उसे खींचकर बड़ी सावधानी से धीरे-से बैठ गया। और फिर अकेले ही जलेबियाँ खाने लगा। "माफ करना, लाचारी है, भूख लगी है। तुम तो खाओगे नहीं।"

"बात यह है भैया, बहुत पुराने संस्कार मन पर पड़े हुए हैं। कोशिश करने पर भी नहीं छूट पाते।"

"कोई बात नहीं, तुम कवि हो, तुम्हें सात खून माफ हैं!"

राकेश सिकुड़ा-सिमटा हुआ 'हें-हें-हें-हें' करके कुछ बड़बड़ाता रह गया। इतने में भूतनाथ खाली ठोंगा फेंकने बरामदे में चला गया। ठोंगा फेंककर, हाथ-मुँह धोकर जब भूतनाथ वापस आया तब तक भीतर का दरवाजा फिर बन्द हो चुका था। फिर उसने दरवाजा खटखटाना शुरू किया।

"अबे, कौन है? दो मिनट के लिए भी चैन नहीं है। अभी एक पगले भूत ने आकर दरवाजा खुलवाया, अब फिर कोई दूसरा बेहूदा आदमी..."

"मैं वही पगला भूत हूँ, कोई दूसरा बेहूदा आदमी नहीं।" भूतनाथ ने कहा।

"अब फिर किस काम से आये हो ?" राकेश ने भीतर से कड़कती हुई आवाज में कहा।

"इसलिए आया हूँ कि यह मकान मेरे कब्जे में है। मैं ही हूँ इसका किरायेदार, तुम नहीं। खोलो जल्दी, वरना अभी दरवाजा तोड़ता हूँ !" भूतनाथ की आवाज राकेश से भी अधिक कड़कती हुई थी।

भीतर नन्दा लिहाफ के भीतर दुबकी हुई थरथर काँप रही थी।

"तुम हटो, मैं जाकर खोलती हूँ। एक नया काण्ड करवाने का इरादा है क्या ?" नन्दा की आवाज खीझ से भरी हुई थी।

नन्दा ने हड़बड़ाहट से दरवाजा खोल दिया। भूतनाथ को देखकर अत्यन्त विनम्र स्वर में दोनों हाथ जोड़ती हुई बोली : "आइए ! क्षमा कीजिएगा। कल रात से मेरी तबीयत ठीक नहीं है। इसलिए वह आज सवेरे से ही बहुत 'नर्वस' हो उठे हैं। उनके बोलने का ढंग आज 'नॉर्मल' नहीं है। आप कुछ दूसरी बात न सोचें। आइए, पधारिए !"

"मेरा कोई काम नहीं है। यों ही चला आया था। शिकायत किस तरह की है ?"

"पता नहीं, यों ही सिर चकरा रहा है और घबराहट हो रही है।"

"आराम करो जाकर, मन को आराम दो। किसी भी बात की तनिक भी चिन्ता न करो। मेरे रहते तुम लोगों को किसी भी बात की तनिक भी तकलीफ नहीं होगी। मैं अभी बाहर जा रहा हूँ, एक जरूरी काम से। राकेश से कहो—बाहर का दरवाजा बन्द कर दे।" कहकर भूतनाथ नन्दा के प्रति दोनों हाथ जोड़कर सीधे नीचे चला गया।

"क्या कहता था साला भूत ?"

"कुछ नहीं। कहते थे, किसी भी बात की कोई चिन्ता न करो। जाकर आराम करो !"

"इस मनहूस भूत के लिए बहुवचनात्मक क्रिया का प्रयोग मेरे सामने कभी न किया करो और उससे बराबर डरा करो और सब समय दूर ही रहा करो। वह कब किस खतरे की स्थिति पैदा कर दे, कहना कठिन है।"

"नहीं, उनसे किसी भी बात का कोई खतरा कभी पैदा नहीं होगा, बल्कि यदि दुर्भाग्य से किसी दूसरे जरिये से कोई संकट आनेवाला भी हो (भगवान् न करे कि ऐसा कोई अवसर कभी आये) तब वही हमें हर मुसीबत से बचाते रहेंगे—वह सचमुच संकट-मोचन हैं। मैं निश्चित रूप से यह बात तुमसे कह रही हूँ कि तुम अपना संकट स्वयं बुलाने पर आमादा हो !"

"अच्छा, यह बात है ! आज तड़के तो तुम कुछ दूसरे ही लहजे से बातें कर रही थीं। अभी-अभी तुम्हारा मन कैसे बदल गया ?"

"यह ठीक है कि अपने माता-पिता से और बचपन से ही मथुरा में अपने चारों ओर के वातावरण से जो संस्कार मैंने पाये हैं उनके प्रभाव से मैं कुछ समय के लिए उनकी जाति की बात सुनकर अवश्य काफी घबरा उठी थी। पर यह बात न भूलो कि मैं बराबर तुमसे यही कहती आयी हूँ कि उनके सम्पर्क में आने से हमारा कुछ भी नहीं बिगड़ा है, बल्कि घोर संकट की स्थिति में उन्होंने बराबर हमें सान्त्वना ही दी है और हमारी सहायता की है।"

"हमें नहीं, तुम्हें ! यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण है। और इसी बात में मुझे खतरा दिखता है।"

"मैं पहले ही तुमसे कह चुकी हूँ कि तुम बहुत ही लफंगे, नीच और कायर किस्म के कवि हो !"

"और यह ज्ञान भी कि मैं लफंगा और कायर हूँ—तुम्हें यहीं आने पर हुआ ! जब मेरे साथ तुम खुशी-खुशी घर के सारे बन्धनों को तोड़कर और माँ-बाप के स्नेह का सारा मायाजाल काटकर मेरे साथ बिना किसी हीले-हवाले के भाग निकली थीं तब तुम्हारे मन में मेरे सम्बन्ध में कुछ दूसरी ही तरह की धारणाएँ बनी थीं।"

"तब मुझे किसी भी व्यक्ति की सही पहचान नहीं थी और घर के बाहर की दुनिया का अनुभव ही कहाँ था ?"

"और आज, इतनी जल्दी, एक चमार के मोह-जाल में फँसने पर तुम्हें सब-कुछ का ज्ञान हो गया ! खूब !"

"तुम जितना और जो-कुछ चाहो जी-भर कह लो ! मैं तुमसे अब

तनिक भी बहस नहीं करूँगी। पर इतना निश्चित समझ लो कि तुम्हारे सम्बन्ध में मेरी जो धारणा बन चुकी है उसमें अब किसी भी हालत में कोई अन्तर नहीं आ सकता।"

"ठीक है, ठीक है, मैं सब समझ रहा हूँ!"

"तुम कुछ भी नहीं समझे हो, न कभी समझ पाओगे। इसलिए मेरा नवेदन है कि अब चुप करो—भगवान् के लिए शान्त मन से सोचो।"

"सब सोच लिया, नन्दा, तुम ठीक ही कहती हो, मैं निकम्मा हूँ, रना मैं बेकारी से मुक्त होकर तुम्हारी और अपना आवश्यकताओं का बन्ध कर पाने में सफल न हो गया होता। मेरे निकम्मेपन और लफ़ंगे-न का एकमात्र कारण मेरी यही बेकारी है।" कहकर राकेश अपनी आँखें अपनी धोती के आँचल से पोंछने लगा।

"बस करो, बस करो!" कहते हुए नन्दा ने अपने आँचल से राकेश ी आँखों को स्नेह-शिथिल उंगलियों से पोंछना आरम्भ कर दिया। फिर ोली: "अब बस करो, वह आते ही होंगे। तुम्हें इस हालत में देखकर या समझेंगे! अब मेहरबानी करके मुझे अधिक लज्जित न करो। अपनी रेशानी की हालत में जितना कह चुकी हूँ उतना ही आवश्यकता से बहुत अधिक हो गया था। बस अब एक भले आदमी की तरह चुप करो।" कहकर नन्दा ने सहसा अपने दोनों हाथों से राकेश के दोनों गालों को सहलाना आरम्भ कर दिया। उस सुख-स्पर्श से राकेश सब-कुछ भूल ाया। उसके अँधेरे मुँह पर चांदनी से भी शुभ्रतर एक मंगलमय प्रकाश चमक उठा, जिसे देखकर नन्दा का उत्साह और बढ़ गया और वह उसके ालों को सहलाती हुई चुमकारियाँ भी भरने लगी, जैसे किसी मचले हुए बच्चे को चुप करा रही हो।

राकेश को अच्छा लग रहा था उसका सहलाना। पर थोड़ी ही देर बाद वह अपनी स्थिति समझ गया और लज्जित होने लगा। और वह उसी लज्जावश धीरे से नन्दा के अप्रत्याशित दुलार से मुक्त होकर अलग खड़ा हो गया, फिर बोला—

"नन्दा, मैं पहली बार आज समझ पाया हूँ कि मैं अभी तक कितना नादान और सचमुच का बच्चा हूँ। सच मानो, तुमने आज मुझे नया

जीवन दे दिया। मैं सच कहता हूँ, आज से तुम्हारी राय के खिलाफ़ कोई काम नहीं करूँगा। मेरी ईर्ष्या भी अब बहुत-कुछ साफ़ हो गयी है, पर अभी तक अपने भीतर लड़कपन के चोंचले मचल रहे हैं—कुछ-न-कुछ उपद्रव करने के लिए आतुर हैं। मुझे छोड़ दो नन्दा, मैं कहीं एकान्त और अँधेरे कमरे में बैठकर प्रकृति-माता से प्रार्थना करना चाहता हूँ कि वह मुझे मेरी बेवकूफियों से मुक्त करे और मेरी गलतियाँ माफ़ करके आगे के लिए सद्‌बुद्धि दे, ताकि मैं कोई ऐसा उपद्रव न कर बैठूँ जो हम दोनों के लिए घातक हो!"



इतने में बाहर से किसी ने दरवाजा खटखटाया।

"फिर आ पहुँचा है वही भूत! न जाने क्यों, उसके प्रति मेरे मन में तीव्र घृणा का भाव समा गया है। न चाहने पर भी, जब-जब वह मेरे निकट आता है, मेरा सारा शरीर अनजाने और अकारण ही आतंकित हो उठता है। अपनी इस क्षुद्रता पर मैं विजय पाने की पूरी चेष्टा कर रहा हूँ। फिर भी अपने इस विकृत विरोधी भाव पर विजय नहीं पा रहा हूँ। जाओ, तुम्हीं जाकर दरवाजा खोलो!"—राकेश ने कहा।

फिर किसी ने बाहर से दरवाजा खटखटाया और एक प्रौढ़ा नारी-कण्ठ की आवाज सुनाई दी: "क्या मिस्टर भूतनाथ भीतर हैं?"

नन्दा और राकेश दोनों विस्मय से एक-दूसरे की ओर देखते रह गये।

नन्दा ने झिझक के साथ दरवाजा खोल दिया। एक फैशनेबल महिला ने—जो साधारण से अधिक फैशनेबल थी और अप-टू-डेट साज-सज्जा से विभूषित लगती थी—भीतर प्रवेश किया और पूछा : "मिस्टर भूत-नाथ यहाँ नहीं हैं क्या ?"

"जी नहीं, कहीं बाहर गये हैं, अभी आते ही होंगे। तब तक आप तशरीफ रखिए।"

"नहीं, मुझे अधिक अवकाश नहीं है। उन्होंने मुझसे कहा था कि उनके यहाँ एक लेडी बीमार है। उसी को देखने के लिए उन्होंने भेजा है। फीस भी मुझे उन्होंने एडवान्स में दे दी है, क्योंकि उन्होंने कहा था कि केस अर्जेण्ट है और मैं जल्दी चली जाऊँ। पर मुझे अभी तक पता नहीं चल पाया है कि मैं ठीक पते पर पहुँची हूँ या नहीं। सड़क का नाम और नम्बर उन्होंने बताया था। मैं पूछ-पूछकर बड़ी मुश्किल से यहाँ पहुँच पायी हूँ। क्या आप यह बताने की कृपा करेंगी कि मैं ठीक ही जगह आयी हूँ !" डॉक्टरनी शायद अपने 'चक्करों' के कारण कुछ घबरायी हुई-सी लग रही थी और असमंजस में थी।

नन्दा ने उसे आश्वस्त करते हुए कहा : "आप निश्चिन्त रहें। आप ठीक ही जगह आयी हैं। मैं ही वह मरीज हूँ। आइए, भीतर चलिए और मेरी परीक्षा कीजिए।"

डॉक्टरनी आश्वस्त हुई और उसकी घबराहट दूर हुई। "ओह, आप ही हैं वह मरीज ! पर आप तो इस समय देखने में बहुत स्वस्थ लग रही हैं !"

"जी आप पधारिए, मैं बताती हूँ अपना हाल।"

डॉक्टरनी ने कुछ संकोच के साथ भीतर प्रवेश किया। नन्दा ने भी संकोच के साथ उसे कोनेवाली टूटी-सी कुरसी पर बिठाया। राकेश को उन दोनों के बीच खड़े रहना या बैठना शोभन नहीं मालूम हो रहा था। वह किसी काम के बहाने नीचे चला गया।

डॉक्टरनी ने पूछा : "कहाँ करना होगा आपको 'एग्जैमिन' ? इसी कमरे में या और कहीं ?"

"यहीं कर लीजिए। यहाँ आपको कोई आपत्ति है क्या ?"

"नहीं, मुझे क्या आपत्ति हो सकती है !" डॉक्टरनी ने सहज स्वर में कहा।

नन्दा डॉक्टरनी के सामनेवाले पलंग पर धीरे-से बैठ गयी।

कुछ छणों तक दोनों मौन वैठे रहे। तव तक डॉक्टरनी ने अपने पर्स से पाउडर की एक छोटी-सी डिबिया निकाली, जिसके प्लास्टिक के छोटे से ढक्कन के खुलते ही एक वड़ी ही मोहक और सोंधी-सी खुशवू से सारा कमरा महक उठा। असल में कमरा प्रारम्भ से ही गन्धा रहा था और डॉक्टरनी प्रत्येक वार साँस खींचते ही अपनी नाक सिकोड़ लेती थी। नन्दा को आदत पड़ चुकी थी, इसलिए उसने अभी तक इस बात पर तनिक भी ध्यान नहीं दिया था, पर डॉक्टरनी कमरे में प्रवेश करते ही सिकुड़ने और सिमटने लगी थी। नन्दा अब तक यह सोच रही थी कि डॉक्टरनी वहुत घमण्डी है और उनके अनसजे कमरे की अस्त-व्यस्तता और फर्नीचर का निपट अभाव देखकर नाक-भौं सिकोड़ रही है। पर जब डॉक्टरनी ने उस छोटे-से डिब्बे के पाउडर को अपनी नाक और गालों के चारों ओर लाल रूई के एक टुकड़े से 'पफ' करना शुरू किया और उसकी महक से सारा कमरा महक उठा तव उसे महसूस हुआ कि उनका कमरा सचमुच में एक अनोखी-सी वदवू से बुरी तरह गन्धा रहा था और इतने दिनों तक इसका तनिक भी अनुभव उसे नहीं हो पाया !

'पफ' कर चुकने से वाद डॉक्टरनी ने बड़े ही परिचित के स्वर में कहा : "हाँ, तो अब बताइए अपना किस्सा तनिक विस्तार से।"

"अपना किस्सा बताऊँ ? और वह भी विस्तार से ? क्यों ? मेरी वीमारी से मेरे किस्से का क्या सम्वन्ध है ?" बड़ी ही परेशानी के स्वर में नन्दा ने कहा।

"अरी भली लड़की, तुम्हारे किस्से में मुझे कोई दिलचस्पी नहीं है। मैं सिर्फ तुम्हारी वीमारी का किस्सा जानना चाहती हूँ।"

नन्दा ने आश्वस्त होकर धीरे-धीरे, पूरी दिलचस्पी के साथ बताना शुरू किया। कव से वह चक्करवाली बीमारी शुरू हुई और डॉक्टरनी ने उसके लक्षण क्या थे और आज क्या हैं ? वह वताती जाती थी और डॉक्टरनी वीच-वीच में टोककर उससे प्रतिप्रश्न पूछती जाती थीं।

नन्दा समझ गयी कि डॉक्टरनी वास्तव में जानकार और विशेषज्ञ है।

उसकी सारी बातें सुन लेने के बाद डॉक्टरनी ने रबड़ की टोंटी को कानों में लगाकर ऊपर हृदय वाले भाग से लेकर नीचे नाभि तक उसके शरीर की परीक्षा ली। बीच-बीच में वह अपनी उँगली से उसके हृदय, पेट और अन्य स्थानों को ठोंकती जाती थी।

ठोंक-पीटकर जब वह पूरी परीक्षा कर चुकी तब कुछ देर तक चुप रही, फिर गम्भीर स्वर मे बोली, "आपके शरीर की परीक्षा से किसी निश्चित बीमारी का पता नहीं लग रहा है। मैं तो इस परिणाम पर पहुँची हूँ कि आपकी बीमारी शरीर से सम्बन्धित उतनी नहीं है जितनी मानसिक है। और मन की परीक्षा के लिए यह आवश्यकता है कि आपके जीवन से सम्बन्धित घटनाओं का विवरण दिया जाय। लीजिए अन्त में हमें फिर उसी विषय की जानकारी प्राप्त करने को विवश होना पड़ रहा है, जिससे आप कतरा रही थीं। चिकित्सा-शास्त्र की यही विचित्रता है।" कहकर डॉक्टरनी खुलकर हँस पड़ी।

नन्दा के मुख पर पड़ती हुई कुछ अँधेरी-सी छाया पर दृष्टि डालकर उसने फिर कहा : "मुझे आरम्भ से ही इस बात का शक था कि आपकी बीमारी शारीरिक न होकर मानसिक होनी चाहिए। आपकी आकृति और प्रकृति पर एक सरसरी नजर डालते ही मैं मन-ही-मन इस परिणाम पर पहुँच गयी थी। जो भी हो, अब कृपा करके आप बिना किसी वहम के मेरे प्रश्नों का सीधा और सहज उत्तर देती चली जायें।" कहकर वह चुप हो गयी।

इधर नन्दा का यह हाल था कि वह अपने जीवन से सम्बन्धित किसी भी घटना के विषय में एक बात भी बोलने के लिए अपने को तैयार नहीं कर पा रही थी। डॉक्टरनी काफी चतुर और चालाक थी। नन्दा के मन का भाव समझने में उसे तनिक भी देर न लगी। उसने स्थिर और गम्भीर स्वर में कहा : "देखिए, पहले आप यह जाने रहिए कि आपकी बीमारी, चाहे उसे किसी भी डॉक्टरी नाम से बताया जाय, वह है बहुत गम्भीर। उसकी तनिक भी उपेक्षा नहीं की जा सकती। यदि कुछ ही दिन और इसे उपेक्षित रहने दिया जायेगा तो यह भयंकर रूप धारण

कर लेगी। ऐसा भयंकर रूप कि अभी अपने जीवन की जिन बातों को एकदम छिपाये रखना चाहती है और उन्हें बताना तो दूर, उनका आभास भी नहीं देना चाहती, उन्हें एक-एक करके अपने भीतर के परदों पर से बाहर निकालकर सब के आगे खोलने के लिए बेहद उत्सुक हो उठेंगी। लोग थोड़ी-सी बातें सुनकर ही उकता जायेंगे और भागने लगेंगे, पर आप उनके पाँव पकड़-पकड़वाकर उन्हें बलपूर्वक रोकना चाहेंगी। इस सम्भावित दुर्गति से अगर आप बचना चाहती हैं तो मैं जो थोड़े-से प्रश्न अभी पूछूँगी उनका संक्षिप्त किन्तु सही उत्तर मुझे देती चली जाइए!" और डॉक्टरनी फिर मौन हो गयी।



तनिक लम्बे-से मौन के कारण कमरे का वातावरण जब सघन हो उठा तब डॉक्टरनी बोली : "कहिए, आप मेरे प्रश्नों का उत्तर देने को तैयार नहीं हैं तो मेरा समय नष्ट न कीजिए, मैं चलती हूँ।"

सहसा नन्दा, जैसे बरबस बोल पड़ी : "नहीं, नहीं, आप इस तरह अभी न जायें, मैं सभी बातें बताने को तैयार हूँ।"

डॉक्टरनी कुछ आश्वस्त लगी। कुछ सेकण्डों के लिए वह जैसे किसी सोच में पड़ी रही, फिर बोली : "यह बताइए कि इस तरह के अनुभव का पहला अनुभव आपको कब, कहाँ और किस परिस्थिति में हुआ?"

"इलाहाबाद के लिए रवाना होने के पहले दिन से ही मुझे ऐसा अनुभव हुआ।"

"इलाहाबाद आने से पहले आप कहाँ थीं ?"

"अपने मायके।"

"आपका मायका कहाँ है ?"

"मथुरा में।"

"विवाह हो जाने के कितने दिनों बाद आप इलाहाबाद के लिए रवाना हुई थीं ?"

"देखिए, देखिए, मेरा विवाह···" और नन्दा सहसा रुक गयी।

"आप रुक क्यों गयीं ? बताती जाइए सभी बातें सही-सही। अपने विवाह के बारे में आप कुछ कह रही थीं।"

"देखिए डॉक्टर, बात असल में यह है कि मेरा विवाह···" और वह फिर रुक गयी।

"देखिए, मैं कुछ छिपाऊँगी नहीं। बात असल में यह है कि मेरा विवाह अभी तक हुआ ही नहीं।"

"क्या सबब हो गया ?"

"दरअसल हुआ यह कि एक आदमी अपने साथ मुझे यहाँ तक भगा लाया।"

"ओह ! तब आपने अभी तक इस बात की सूचना पुलिस को क्यों नहीं दी ?"

"देती कैसी ? मैं विवश जो हूँ !"

"आप आज के प्रगतिशील-युग की एक पढ़ी-लिखी और वयस्क युवती हैं। आपको इस परिस्थिति से जूझने के लिए हर-सम्भव उपाय काम में लाना चाहिए। अगर पढ़ी-लिखी औरतें भी गुण्डों के दबाव में आकर उनका भण्डाफोड़ नहीं करेंगी तो अनपढ़ युवतियों का ऐसे संकटों से उद्धार कौन करेगा ?"

"पर आप अभी तक मेरी बात शायद समझी नहीं हैं। मुझे कोई गुण्डा 'किडनैप' करके यहाँ तक नहीं लाया है।"

"तब कौन लाया है ?"

"मैं जिस युवक को चाहती थी वही मुझे यहाँ ले आया है।"

"तब विवाह क्यों नहीं हुआ ?"

"माँ-बाप की रजावन्दी नहीं थी और मेरे चाहनेवाले की आर्थिक स्थिति संकटपूर्ण है।"

"अभी आपके मुंह से यह वाक्य निकला—'मैं जिस आदमी को चाहती थी', तो क्या आप अब उसे नहीं चाहतीं? ठीक-ठीक बताइए, इसी उत्तर पर आपकी बीमारी का सारा 'क्लू' निर्भर हो सकता है।"

नन्दा ने सिर पहले ही नीचा कर लिया था। अब कुछ और नीचा कर लिया। जमीन पर मटर के दाने की तरह की कोई चीज शायद कल ही से पड़ी थी। उसी पर अपना ध्यान केन्द्रित करने का प्रयत्न करते हुए नन्दा ने, शायद मटर के उसी दाने से पूछकर उत्तर दिया: "क्यों नहीं, मैं अभी भी उसे चाहती हूँ, पर अब वह पहले का-सा आकर्षण उसके प्रति नहीं रहा।"

"मेहरबानी करके उसके प्रति पहले का-सा आकर्षण न रहने का कारण सोचकर बताइए।"

इस बार नन्दा चट से बोल उठी: "कारण बहुत से हैं, उन्हें पूछकर क्या कीजिएगा?"

"वाह! कारण यदि मैं न जान पायी तो अकारण और बिना किसी आधार के मैं आपके रोग का निदान कैसे कर सकती हूँ?"

"तो लीजिए, सुनिए!" कुछ तमकती हुई नन्दा बोली: "एक कारण तो स्पष्ट ही यह है कि जो व्यक्ति अपनी रोजी का ही कोई प्रबन्ध कर सकने में अक्षम हो उससे इस जमाने में कैसी चाहत! दूसरे कारण का अनुमान आप ठीक ही लगा रही हैं—मैं इधर एक दूसरे व्यक्ति को चाहने लगी हूँ।" अन्तिम वाक्य नन्दा ने काफी धीमे स्वर में कहा।

"हूँऽ तो आपको मेरे सम्भावित अनुमान का पता चल गया! अच्छा, यह बताइए कि जिस दूसरे व्यक्ति को आप चाहने लगी हैं उसमें क्या विशेषता आपने पायी?"

"उसमें नहीं, कृपा करके 'उनमें' कहिए। वह एक पहुँचे हुए सन्त की तरह लगते हैं मुझे। उनके प्रति किसी तरह की अभावना मुझे सहन नहीं होती।"

"पर माफ कीजिएगा, एक बात मैं स्पष्ट शब्दों में पूछना और जानना

उत्तर जानना चाहती हूँ। क्या आपका विश्वास है कि वह पूजनीय सन्त महात्मा आपका प्रेम किसी रूप में स्वीकार करेंगे ?"

"नहीं। मुझे इसका तनिक भी विश्वास नहीं है। इतना अवश्य मैं विश्वास के साथ कह सकती हूँ कि उनका प्रेम सभी मनुष्यों के प्रति समान और महान् है। मेरे प्रति भी उनका यही प्रेम है जो मानव-मात्र के लिए है। मैं उनके चरित्र की सभी विशेषताओं से प्रभावित होकर उन्हें चाहने लगी हूँ।"

"अच्छा बहनजी, बहुत-बहुत धन्यवाद ! आपके जीवन की कुछ भेद-भरी, दिलचस्प और महत्त्वपूर्ण बातें सुनीं। मुझे उन पर ठीक से विचार करने का समय दीजिए, तभी मैं कुछ सलाह आपको दे सकूँगी। शायद मेरी वह तुच्छ सलाह आपको शारीरिक और मानसिक दोनों रोगों से मुक्त कर सके। और यह भी सम्भव है कि शायद अपने वर्तमान जीवन की कँटीली राहों, बीहड़ संकटों के बीच किसी सुलझे हुए रास्ते में चलने में मेरी सलाह कोई सुलझा हुआ रास्ता दिखा सके। आप मेरी सलाह मानें या न मानें इससे मुझे कोई वास्ता नहीं; पर मुझे यह सन्तोष हो जायेगा कि मैंने अपने कर्त्तव्य का निर्वाह पूरी सच्चाई और सहृदयता से किया है।"

"अच्छा, आप इन उलझे हुए प्रश्नों और उत्तरों से उकता गयी होंगी और थकान का अनुभव भी कर रही होंगी। मैं आपके लिए एक कॉफी बना लाती हूँ, तब तक आप समाधान पर कुछ चिन्तन कर लीजिए।"

"ठीक है, धन्यवाद !"

और नन्दा नीचे कॉफी बनाने चली गयी। कुछ देर लग गयी उसे कॉफी बनाने में, जब वापस लौटी तब उसने देखा कि डॉक्टरनी के चेहरे में स्थिरता है। चिन्ता का दौर शायद समाप्त हो गया था।

कॉफी का प्याला मुँह से लगाकर बड़े प्रेम से एक घूँट लेते ही उन का चेहरा सचमुच खिल उठा। "वाह ! सचमुच कॉफी बढ़िया बनी है। एक घूँट लेते ही, मेरा जो समाधान अधूरा रह गया था और वह अधूरापन मुझे काँटे की तरह खल रहा था वह जैसे 'फ्लैश' में पूरा हो गया है और मेरे सन्तोष के लिए इससे अच्छा और कोई समाधान नहीं हो सकता

या।"

"क्या है वह समाधान, क्या बताने की कृपा करेंगी ?" नन्दा ने कुछ डरती हुई-सी आवाज में कहा।

"इत्मीनान से बैठ जाइए सामनेवाले पलंग पर, अभी बताती हूं। प्याला जरा खत्म कर लूं।"

"ठीक है," कहकर नन्दा सामनेवाले पलंग पर इत्मीनान से बैठ गयी यद्यपि उसके हृदय की धड़कन बढ़ती चली जा रही थी।

कॉफ़ी की अन्तिम घूंट समाप्त करके डॉक्टरनी ने प्याला धीरे से नीचे फर्श पर रख दिया। फिर चेस्टर की जेब से एक खुशबूदार नीला-सा रूमाल निकालकर बड़ी नज़ाकत के साथ उसने उससे अपने दोनों होंठ पोंछे और इस बीच वह नन्दा की ओर एकटक देखती रही।

"हाँ बहनजी, समाधान बताने से पहले मैं दो-एक प्रश्न आप से और कर लेना आवश्यक समझती हूँ।"

"शौक से कीजिए। इतने विकट-से-विकट प्रश्न कर चुकने और मेरा उत्तर पा चुकने के बाद भी अब और कौन-सा प्रश्न शेष रह गया है, यह जानने की उत्सुकता मेरे मन में जोर मार रही है। अब आप कृपया पूछ ही डालिए उन प्रश्नों को भी।"

"क्या आप यह बताने की कृपा करेंगी कि जिन सन्तजी के प्रति आपके मन में तीव्र आकर्षण उत्पन्न हो चुका है, वह यदि आपकी भावना का प्रतिदान उसी रूप में देने को तैयार हो जायें और आपसे विवाह करने को राजी हो जायें (मेरा 'क्वैश्चन' स्पष्ट ही 'हाइपोथेटिकल' है), तब आप क्या यह समझती हैं कि आप अपने उस वैवाहिक जीवन को सफल मानकर सन्तोष पा जायेंगी ?"

"देखिए बहनजी, क्षमा करें, मैं इस तरह के 'हाइपोथेटिकल' प्रश्न का उत्तर दे सकने में एकदम असमर्थ हूँ।"

"आप हर तरह से समर्थ हैं।" डॉक्टरनी ने कुछ उत्तेजित स्वर में कहा। "मेरा अनुमान है कि इस बीच वैवाहिक या उसी तरह के मिलते-जुलते जीवन का काफ़ी गहरा अनुभव आपको अवश्य ही हो चुका होगा। इसलिए जो 'हाइपोथेटिकल' प्रश्न मैंने आपके सामने रखा है, उसका उत्तर

आप इत्मीनान से दे सकती हैं।"

"वहनजी वात यह है कि अभी आपको नहीं मालूम कि जो प्रश्न अभी आपने किया है उसके पीछे कितनी असम्भावनाएँ और विडम्वनाएँ चिपकी हुई हैं। इसलिए उस सम्बन्ध में कुछ वोलने में मुझे वड़ी विकट घुटन का अनुभव हो रहा है।"

"तव आप साफ-साफ शब्दों में खुलकर वात कीजिए। और विना कुछ भी छिपाये मुझे विस्तार-सहित वताइए कि वे असम्भावनाएँ और विडम्वनाएँ क्या हैं और किस तरह की हैं? विना इस प्रश्न का उत्तर पाये मैं किसी भी समाधान तक नहीं पहुंच सकती।" और डॉक्टरनी इत्मीनान से कुरसी पर चिपककर वैठ गयी। इस क्रिया से पुरानी और आधी टूटी कुरसी तनिक चरमरा उठी। दोनों जैसे अत्यन्त संकट की सम्भावना से तनिक सावधान हो गये।

"आप भी इसी या वगलवाले पलंग पर आकर वैठ जाइए, वह कुरसी टूटी हुई है।" नन्दा ने क्षमा-याचना के स्वर में कहा।



डॉक्टरनी विना तनिक भी विलम्व के दूसरे पलंग पर वैठ गयी। फिर वोली, "अच्छा तो वहन, वताइए, मेरे प्रश्न का उत्तर दीजिए।"

"वहनजी संकोच का अनुभव होता है। पर आप पर मेरा पूरा विश्वास हो चुका है। मेरे अन्तर से कोई आवाज मुझसे कह रही है कि आप मेरी वहुत वड़ी रक्षा के लिए आयी हैं। इसलिए मैं वताती हूँ। और कोई भी

वात मैं राई-रत्ती भी आपसे नहीं छिपाऊँगी। सुनिए। वहनजी, आप मेरी माँ से वहुत वढ़कर हैं। यह ऐसी वात है जिसका रंचमात्र आभास भी मैं किसी को नहीं दे सकती। पर आपके आगे अपने मन का पिछले कुछ दिनों से जमा हुआ भार अवश्य हलका करना चाहती हूँ। इस पेचीदा प्रश्न पर आपकी अत्यन्त मूल्यवान् सलाह से पूरा-पूरा लाभ उठाकर कृतार्थ होना चाहती हूँ। तो सुनिये, जिस सन्त महात्मा की चर्चा मैंने आप से की है, उनका जन्म अस्पृश्य यानी अछूत यानी हरिजन वर्ग में हुआ है। और मैं जन्म से एक ब्राह्मण परिवार के कट्टर वातावरण में पली हूँ। मेरी माँ एक तो यों ही घर से एक पुरुष के साथ (फिर चाहे वह ब्राह्मण ही क्यों न हो) भाग आने से किस सीमा तक परेशान हो रही होंगी, इसका ठीक अन्दाज लगा पाना मेरे ही लिए संभव नहीं है, आप कैसे समझेंगी ? तिस पर यदि मेरे मन की इस दुर्गति की भनक भी उनके कानों में पड़ेगी कि मैं एक अस्पृश्य जातीय व्यक्ति से सम्वन्ध जोड़ना चाहती हूँ तो प्रलय आ जायेगा। साफ, सीधी और सच्ची वात यह है कि स्वयं मेरा मन एक असवर्ण जाति के पुरुष से प्रेम-संवन्ध जोड़ने से बुरी तरह कतरा रहा है। फिर भी प्रगतिशीलता के वहाने शायद स्वतःस्फूर्त प्रेम की तुष्टि किस कदर हो सके, और मेरे मन के असन्तुलन का कोई हल किसी हद तक शायद निकल ही आये, इस आशा में धैर्य रखे हूँ। क्योंकि सव-कुछ के वावजूद, मेरा मन उनसे प्रेम करने से नहीं हिचक रहा है, और यह मेरे लिए कई दृष्टियों से एक वड़ी मारक समस्या है। समाज से वहिष्कृत होने के साधन तो मैं तभी जुटा चुकी थी जव मथुरा से भागकर इलाहावाद चली आयी थी। और अव मन की इस नयी विकृति से मैं वेहद परेशान हो उठी हूँ, वहनजी। अव केवल आपके ही समुचित समाधान की आशा पर मैं इस वीहड़ संकट की परिस्थिति में टिक सकने के किसी आधार की संभावना पर जी रही हूँ। कोई समाधान खोजिए मेरे इस मानसिक संकट का, आपके पाँवों पड़ती हूँ।"—कहकर नन्दा ने सचमुच डॉक्टरनी के दोनों चरण छूकर उन्हें कसकर पकड़ लिया।

"अरे, आप यह क्या कर रही हैं। यह मेरा कर्त्तव्य है, मैं अपनी

समझ और सामर्थ्य के अनुसार अवश्य ही कोई समाधान निकालूंगी। इसकी फीस भी मैं ले चुकी हूँ।"

"मेरे मन का समाधान बतायेंगी तो मैं अपना सर्वस्व आपको सौंप दूंगी, बहनजी, फीस की क्या बात है!"

"अच्छा तो अब आप शान्त होकर सुनिए और जैसा मैं कहूं उसी हिसाब से चलिए। हम दोनों के पूर्ण सहयोग से मामला किसी हद तक सुधर सकता है। मैं अभी निराश नहीं हूं, पर शर्त वही है जो मैंने अभी बताया। मुझे आपका पूरा सहयोग चाहिए।"

"तब ठीक है। बताइए वह समाधान क्या है?"

"सुनिए, बहनजी! मेरी बातों पर ध्यान देकर गहराई से विचार कीजिए। जिस गहराई में डूबकर मैंने समाधान खोज निकाला है।"

"अब बता ही दीजिए। कृपया अधिक विलम्ब न कीजिए। मैं बहुत अधीर हो रही हूं।"

"देखिए, बात तो यह है कि आप मथुरा से जिस व्यक्ति के साथ चली आयी हैं, उसका साथ तनिक भी छोड़ने की बात मन में नहीं लाइए। मैं सन्त महात्मा के प्रति अधिक प्रेमाकर्षण की तनिक भी निन्दा नहीं करना चाहती। इसके विपरीत मैं उसे बहुत बड़े महत्व की बात मानती हूं। साधारण स्थिति में किसी 'नॉर्मल' नारी को मैं यही उपदेश देती कि वह समाज, संसार और संस्कारों की तनिक भी परवाह न करके पूरी लगन से उस अस्पृश्य जातीय सन्त के प्रति पूर्ण समर्पित हो जाये—बिना तनिक भी झिझक के। पर आपका 'केस' कुछ निराला है। माफ़ कीजिएगा, आप एक 'नॉर्मल' नारी नहीं हैं। जो व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक समस्याएं आपकी अपनी अनुभवहीनता के कारण आपके आगे खड़ी हैं, उन्हीं का भार ढोने में जिस मानसिक तनाव का अनुभव आपको हो रहा है, उसने आपके मन को बुरी तरह झकझोर डाला है। अब यदि इस तनाव में रत्ती-भर भी वृद्धि होगी तो आप बाजार में, बीच सड़क में इस तरह हँसने, बोलने, रोने और नाचने लगेंगी कि कोई शत्रु के लिए भी कोई उस स्थिति की कामना नहीं कर सकता। मेरी दिलचस्पी इस समय केवल आपके

मन का तनाव दूर करने की ओर है, न कि किसी सामाजिक सुधार की ओर इसलिए मेरा अनुरोध है कि अभी आप अपने पहले तनाव की स्थिति तक ही अपने को सीमित रखें। आगे जब आप महसूस करें कि आप किसी नये तनाव से जूझने की मानसिक और शारीरिक स्थिति में आ गयी हैं तब फिर सन्त-महात्मा का साथ बड़े शौक से दे सकती हैं। वह स्थिति तब आपके लिए बहुत स्वस्थ और हितकारी भी सिद्ध हो सकती है। तब एक अपूर्व आत्मिक बल आपके रुद्ध जीवन की सभी कुण्ठाओं का निराकरण कर देगा।"

"मेरी दिलचस्पी इस बात से बढ़ रही है कि आपने पहले शरीर-विज्ञान के आधार पर मेरी बात की जाँच की, फिर आप मनोविज्ञान तक आगे बढ़ीं और अब आत्मबल तक पहुँच रही हैं। बहनजी, मैं आपकी बात समझ रही हूँ। मैं अवश्य आपकी सलाह के अनुसार चलने का पूरा प्रयत्न करूँगी, अपने मन की विरोधी प्रवृत्तियों से भी अवश्य जूझूँगी—पूरी लगन से फिर भी आपको पहले ही बता दूँ कि सन्त महात्मा के प्रति अपने मोह से मैं किसी प्रकार भी मुक्ति पाने में असमर्थ रहूँगी। यह 'कम्प-लैक्स' मेरे मन में बराबर बना रहेगा। अब आगे बढ़िए। पहली बात तो आपकी हो चुकी अब दूसरी बात बताइए।"

"दूसरी बात यह है, बहन, कि जिन कारणों से आप अपने मथुरा-वाले प्रेमिक से तंग आ रही हैं उनमें एक आपने आर्थिक भी बताया है। आपने यही तो बताया कि जो पुरुष अपनी रोजी का कोई उपाय नहीं कर सकता उसके साथ आज की आर्थिक परेशानियों के युग में कैसे और कब तक निभ सकती है। है न यही बात? मैंने कहीं आपकी बात को गलत तो नहीं समझा है?"

"आपने बिलकुल ठीक समझा है, बहनजी। अब आगे बढ़िए।"

"ऐसी हालत में मेरे मन में यह प्रश्न स्वभावतः [illegible] आपको 'महात्मा' से (महात्मा कहते हुए डॉक्टरनी के [illegible] एक हलकी-सी व्यंग-भरी मुस्कान बरबस [illegible] पर गौर कर रही थी) यदि आपके प्रेम के अनुकूल [illegible] तो क्या आप यह समझती हैं कि उनके [illegible]

[illegible]

नहीं उठेगा ? उनकी आर्थिक स्थिति के सम्बन्ध में भी मैं कुछ जानकारी प्राप्त करना चाहूँगी—यदि आपको कोई आपत्ति न हो तो।"

"मेरी करबद्ध प्रार्थना है, बहनजी, कि अब इस प्रश्न को अधिक तूल न दीजिए। आपका आशय मैं समझ चुकी हूँ और इस बात को ध्यान में रखकर चलूँगी, यह आश्वासन आपको देती हूँ।"

"तब ठीक है। मुझे अब अधिक कुछ कहना नहीं है। आप स्वयं सयानी और अनुभव-सिद्ध नारी हैं। जीवन में अब आगे किसी से सम्बन्ध स्थापित करने से पहले अपने पिछले अनुभवों से लाभ उठाने से कभी न चूकें। तब आप अपनी रक्षा हर परिस्थिति में स्वयं ही आसानी से कर पायेंगी।"

"बहुत-बहुत धन्यवाद बहनजी, आप मेरे लिए ईश्वर की पठायी हुई आयी हैं। अपने मन को किसी भी व्यक्ति के आगे हलका करने के लिए मैं इतने दिनों से प्रतिपल छटपटा रही थी। आपके आने से मेरा मन तीन-चौथाई से भी अधिक हलका हो गया है, साज ही जो अमूल्य उपदेश आपने दिये हैं उससे मुझे अपना भावीपथ, वर्तमान बीहड़ वन के बीच से, निकाल लेने में बड़ी सहायता मिलेगी, इसका पूरा विश्वास मेरे मन में जम गया है। बहुत-बहुत धन्यवाद, बहनजी। मेरी आन्तरिक श्रद्धा—मेरा प्रणाम स्वीकार कीजिए।" डॉक्टरनी को चलने के लिए उठते देखककर नन्दा ने कहा।



डॉक्टरनी को नीचे तक पहुँचाकर दरवाजा फिर भीतर से वन्द करके जैसे ही नन्दा ऊपर को वापस जाने लगी वैसे ही किसी ने वाहर से दरवाजा खटखटाया।

"ओफ्, क्या आफत है !" मन-ही-मन बड़बड़ाती हुई नन्दा दरवाजा खोलने लौट पड़ी। डॉक्टरनी के चले जाने के वाद वह एकदम एकान्त में कई वातें सोचना चाहती थी, पर उस अवसर में विघ्न आते देखकर वह तनिक खीझ उठी थी।

दरवाजा खोलते ही राकेश ने भीतर प्रवेश किया। हाथ में एक झोला था।

"क्या है झोले में ?" नन्दा ने पूछा।

"तीन दिन से तुम्हारे यहाँ चावल ही खतम हैं। खिचड़ी या तहरी खाने की वड़ी इच्छा हो रही थी। इसलिए, यह लो, तीन किलो देहरा-दूनी वासमती और कुछ सब्जी भी ले आया हूँ।" कहकर झोला नन्दा के हाथ में थमाते हुए उसने पूछा : "डॉक्टरनी ने क्या बताया ? कोई दवा लिख गयी है या नहीं ?"

"ऊपर चलो, अभी बताती हूँ।"

"अभी तुम ही चलो ऊपर, मैं तनिक खिचड़ी का प्रबन्ध कर लूं। पहले चूल्हा जलाता हूँ। इस समय कैसी है तुम्हारी तबीयत ? लाओ, कुछ पैसे निकालो, डॉक्टरनी की बतायी हुई दवा ले आना है।"

"मेरी तनिक भी चिन्ता न करो। मैं बिना दवा के [illegible] हूँ।"

"अच्छा! यह चमत्कार दिखा दिया डॉक्टरनी ने?"

"डॉक्टरनी सचमुच बहुत ही होशियार और बुद्धिमती है। बाद में बता दूँगी सभी बातें विस्तार से। तुम ऊपर जाओ। तुम्हारी खिचड़ी का सारा प्रबन्ध मैं स्वयं किये देती हूँ। खिचड़ी खाओगे या तहरी? ठीक-ठीक बताओ। जिस चीज के लिए भी मन मचल रहा हो वही बनेगी। इतने शौक से बासमती लाये हो। तुमने कभी न खिचड़ी बनायी है न तहरी—सब चौपट कर दोगे।"

नन्दा के स्वर से स्नेह छन-छनकर एक-एक बूँद अमृत की तरह टपक रहा था। राकेश का अन्तर गद्‌गद् हो गया। वह चिन्तित हो रहा था कि न जाने डॉक्टरनी कौन-सी असाध्य बीमारी बतायेगी। अब जब नन्दा उसे स्वस्थ दिखाई दी और उसके कण्ठस्वर से और बातों से भी इस बात का प्रमाण मिला कि वह मन-ही-मन सहज शान्ति का अनुभव करने लगा था।

"नन्दा, विश्वास मानो, मैं बहुत बढ़िया तहरी बना लूँगा, चखकर बताना।"

"बस, बस, बहुत देख चुकी हूँ।" नन्दा ने कहा।

"अब चुपचाप भले आदमी की तरह ऊपर जाकर आराम करो। आधे घण्टे के भीतर तुम्हारे लिए थाली में तहरी परोसकर ले आऊँगा।"

"अच्छी बात है, आज तुम्हारे हाथ का चमत्कार भी देख लिया जाय। तब मैं जाती हूँ। कोई काम हो तो बुला लेना, संकोच तनिक भी न करना।" कहकर नन्दा जीने से होकर ऊपर चली गयी।



कपड़े बदलकर जब वह पलंग पर लेट गयी तब डॉक्टरनी के उपदेशों पर विचार करने लगी। सोचते-सोचते उसे लगा कि उसकी समस्याओं की सीमा सिमटने के बजाय उनका विस्तार बढ़ता चला आ रहा है—अनन्त की किसी अनिर्दिष्ट सीमा-रेखा को पार करने के प्रयास में। जैसे एक गाढ़े काले रंग का महासागर मर्यादा लाँघकर उसकी ओर बढ़ा चला आ रहा हो। उस भयंकर सागर में भी भीषण तूफान आया हुआ है और वह केवल उसी को नहीं, उसके चारों ओर के परिवेश को एक ही बार में लील जायेगा। उसी दुःस्वप्न की-सी मनःस्थिति के बीच उसे लगा कि वह भागना चाहती है पर सोच नहीं पाती कि संसार के किस छोर की ओर भागे, किस ओर दौड़े और वह दौड़ भी कितनी तेजी से पायेगी? क्योंकि महासागर की शेषनाग के फनों की तरह काली-काली लहरें जिस वेग से आगे बढ़ रही हैं उसका मुकाबला कर सकने में वह असमर्थ है।

वह इस कदर भयभीत हो उठी कि उसने मुलायम कम्बल से ढाँपे हुए अपने मुँह को बाहर निकाल लिया। तब जाकर घुटन कुछ कम हुई। वह सहसा पलंग छोड़कर कमरे के फर्श पर खड़ी हो गयी और दोनों हाथों को उपर की ओर जोड़कर मन-ही-मन प्रार्थना करने लगी, "ग्राह के भयंकर जबड़ों से गज को मुक्त करने वाले भगवान्, तुम कहाँ हो? तुम कहीं हो भी या नहीं? आओ असंख्य ग्राह मेरी ओर दौड़े आ रहे हैं, उनसे मेरा उद्धार करो! मेरे मन की असंख्य जटिल समस्याओं को अपने हाथ के एक ही झटके से झाड़-बुहारकर साफ कर दो!

आओ, आओ! जल्दी आओ!"

प्रार्थना करते-करते उसकी आँखें नम हो आयी थीं। आँसू पोंछकर वह फिर कम्बल के भीतर सिमटकर लेट गयी। अपने शरीर और मन को इस कदर क्लान्त पा रही थी कि लेटते ही कुछ ही क्षणों में जैसे घोड़े बेचकर सो गयी।

उसकी आँखें तभी खुलीं जब राकेश ने उसे उसका शरीर हिला-हिलाकर जगाया।

"क्या बात है?" उसने आँखें मलते हुए कहा।

"लो, गरम गरम तहरी खा लो। फिर सो जाना।" राकेश बोला।

नन्दा हड़बड़ाती हुई उठ बैठी। उसे सचमुच बड़ी भूख लगी थी। वह कम्बल ओढ़कर पलंग पर ही बैठी रही। राकेश ने उसके आगे एक स्टूल रख दिया। स्टूल पर गरमागरम, धुंआती हुई तहरी की थाली रख दी और उसके ऊपर बड़े चम्मच से दो चम्मच कच्चा घी छोड़ दिया। साथ में एक हरी मिर्च और आधा कटा नींबू भी।

नन्दा ने बड़े प्रेम से तहरी खाना शुरू किया और तहरी सचमुच अच्छी बनी थी। वैसे उतनी तेज भूख में मिट्टी भी अमृत लग सकती है—अनुभवियों का कहना है। नन्दा ने बड़ी उदारता से तहरी की प्रशंसा की। वह एक-एक कौर रस ले-लेकर खा रही थी। राकेश सुनकर, फूल-कर कुप्पा हो गया, जैसे कुछ भी मेहनत न करने पर भी उसे डी० लिट्० की डिग्री मिल गयी हो। इस खुशी में उसने नन्दा के स्टूल के पास ही एक दूसरे स्टूल पर अपनी भी थाली लगा ली और टूटी कुरसी पर बैठ-कर खाने लगा।

"वाह!" एक गरमागरम कौर मुंह में डालते ही राकेश ने कहा—"ऐसी स्वादिष्ट तहरी इससे पहले मैंने जीवन में कभी नहीं खायी।"

"लगता है, तुम्हारी भूख भी इस समय मेरी ही तरह बहुत तेज हो गयी है। मुझे भी बड़ी भूख लगी थी। इसी कारण यह तहरी मुझे अमृत सी लगी।"

पिछली प्रशंसा को फीका पड़ते देख राकेश तनिक खिन्न हुआ। फिर बोला: "आश्चर्य है, भूतनाथ अभी तक नहीं आया और हम अतिथि

देव को भोग लगाये बिना ही स्वयं खाने बैठ गये।"

"मुझे तो लगता है वह आज इस समय नहीं आयेंगे। तुमने उनका अपमान किया है, उनकी लायी हुई कचौड़ियों और जलेबियों का तिरस्कार किया है पर उनके लिए कुछ बचाकर रख छोड़ा है या नहीं ?"

"अभी तक तो बटलोही में थोड़ी-सी बची है पर आगे नहीं बचती दिखती है।"

"क्यों ?"

"इसलिए कि मुझे भूख लगी है। तहरी भी स्वादिष्ट लग रही है, इसलिए शेष सब हम खा लेंगे।"

"तुम्हीं खाना, मैं नहीं खाऊँगी। मेरा पेट भर गया है।"

"तब ठीक है। मैं अकेला ही सब चट कर जाऊँगा। भूतनाथ ने तो पहले ही कचौड़ियों से अपना पेट भर लिया होगा।"

"पर डॉक्टरनी उन्हें कहाँ मिल गयी ? ऐसी असाधारण प्रतिभावाली डॉक्टरनी आज के जमाने में मिलना बहुत मुश्किल है। और फीस भी उसे 'एडवान्स' में दी जा चुकी है, उसी ने मुझे बताया ! वह केवल 'फिजीशियन' ही नहीं, 'साइकोलॉजिस्ट' भी है—'साइकोपैथी' में पारंगत लगती थी। स्वभाव की भी बहुत सहज और सहृदय है ?"

"क्या बीमारी बतायी उसने और क्या दवा दे गयी ?"

"उसने बीमारी का कुछ लैटिन नाम बताया था, मुझे याद भी न रहा। और दवा भी कुछ नहीं बता गयी ?" राकेश आश्चर्य से दोनों आँखें फाड़कर नन्दा की ओर देखता रहा। "और तुम अभी उसकी इस कदर प्रशंसा कर रही थी।"

"दवा नहीं लिख गयी, इसलिए तो मैं उससे प्रसन्न हूँ। वह कोई दवा लिख भी जाती तो भी मैं न खाती।"

"क्यों ?" उसी तरह नन्दा की ओर देखते हुए राकेश ने पूछा।

"इसलिए कि सभी प्रकार की डॉक्टरी दवाओं के प्रति 'एलर्जिक' हूँ। एक बार जब मैं गिर पड़ी थी, तब कोई डॉक्टर नुस्खे में एक दवा लिख गया था। उसे खाकर मैं बेहोश हो गयी थी। शायद उसी से रिऐक-

बीच में चक्कर आने की बीमारी शुरू हुई थी। पिताजी स्वयं वैद्य हैं और उन्होंने जब एक आयुर्वेदिक औषधि मुझे दी तब मैं ठीक हुई।"

"यह तो ठीक है, पर डॉक्टरनी का तो कर्तव्य था—कोई दवा 'प्रेस्क्राइब' करना।"

उसने बताया कि मेरा रोग शारीरिक नहीं मानसिक है। और उसका निराकरण कैसे हो सकता है, इस सम्बन्ध में उसने कुछ हिदायतें मुझे दीं।"

"क्या हिदायतें दीं ? तनिक बताओ तो सही ! "

"उसने कहा, सभी प्रकार की चिन्ताएँ त्याग दो। मन को स्थिर और सन्तुलित रखो। किसी प्रकार का तनाव न आने दो—आदि-आदि।"

"खैर, बात तो उसने अच्छी ही कही, पर ऐसी हिदायत तो कोई साधारण आदमी भी तुम्हें दे देगा। इसके लिए एक विशेषज्ञ डॉक्टरनी की आवश्यकता ही क्या थी ?"

"पर इसमें हर्ज ही क्या हुआ ? फ़ीस तक हमें नहीं देनी पड़ी और उसकी मीठी-मीठी सान्त्वना-भरी बातों से मुझे तत्काल ही लाभ भी पहुंचा। मैं इस कदर अपने को स्वस्थ महसूस कर रही हूँ—केवल उसकी बातें सुनकर, कि कुछ बता नहीं सकती।"

"यह मेरी बनायी तहरी का गुण है, डॉक्टरनी की बातों का नहीं !"

"जो भी हो, अब तुम भी आराम करो। कल रात से नींद नहीं आयी मुझे, भूख शान्त होने पर अब नींद सता रही है। चलो, तुम भी तनिक आराम कर लो। अब आगे कोई भी बात मुझसे मत करो। लो मैं यह लेटी।" वह लेटने ही जा रही थी कि उसे याद आया, अभी तक उसने खाना खाने के बाद से हाथ-मुँह भी नहीं धोया। बोली: "पलंग छोड़ने को जी नहीं चाहता। जाड़ा लग रहा है। एक काम करोगे ?"

"क्या ?"

"नीचे जाकर चट से चिलमची और एक लोटे में पानी ले आओ। हाँ, साबुन भी। मैं यहीं बैठे-बैठे हाथ-मुँह धो लूंगी।"

राकेश को आश्चर्य हुआ, नन्दा को इस हद तक आलस्य में डूबते देखकर। आज वह पहली बार इस सीमातीत आलस्य का परिचय दे रही

थी, पर वह बोला कुछ नहीं। अपनी और नन्दा की थालियां उठाकर वह सीधे नीचे गया। हाथ-मुँह धोकर, शिलफची में साबुन की डिब्बी रखकर बायें हाथ से उसे पकड़ा और दाये कन्धे पर एक तौलियाँ लटकाकर दाये ही हाथ से एक लोटा पानी उठाया और ऊपर चला गया।

शिलफची में नन्दा के हाथ धुलाकर, तौलिया नन्दा को दे दिया और फिर अपने भी हाथ पोंछकर वह अपने पलंग पर हाथ-पांव फैला कर शिवासन में लेट गया। दोनों अपने-अपने पलंग पर शाम को प्रायः साढ़े पांच बजे तक गहरी नींद में सोते रहे। साढ़े पांच बजे जब नीचे बड़े जोरों से किसी ने दरवाजा खटखटाया तब राकेश हड़बड़ाता हुआ उठा। भूतनाथ आ गया था। उसकी आवाज पलंग पर ही लेटे-लेटे सुनकर नन्दा आश्वस्त हुई। उसे डर था कि कहीं भूतनाथ लौटे ही नही और किसी दूसरी जगह—भाड़े के नये मकान में—न चला गया हो। नीचे भूतनाथ और राकेश के बीच बड़े प्रेम से बातें हो रही थी। वह भी नन्दा सुन रही थी। इस बात से भी उसका जी हलका हुआ। जरा-जरा-सी बात पर उसका जी क्यों घबरा उठता है, अपनी इस कमजोरी की बात सोच-सोचकर वह खिन्न हो उठी।

भूतनाथ ऊपर आया। दरवाजे पर ही से बोला: "बहू, तबीयत कैसी है?"

नन्दा ने कम्बल हटाकर अपना मुँह उघाड़ा। भूतनाथ अब उसके पलंग के पास ही आकर खड़ा था।

"कैसी है अब तबीयत?"

"अब मैं एकदम ठीक यानी स्वस्थ हूँ।" नन्दा ने उत्तर दिया।

भूतनाथ ने देखा, प्रसन्न मुख पर एक शान्त स्निग्ध और बहुत ही सुन्दर मुसकान बिखर गयी थी और वह सहज प्रेम से भूतनाथ के चेहरे की ओर एकटक देख रही थी। भूतनाथ ने देखा, उस मुसकान में जाग्रत संसार की किसी भी अनुभूति का लेश भी व्यक्त नहीं हो रहा था। वह मुसकान जैसे सीधे किसी दिव्य-लोक की अकलुष चेतना की चमक लिये हुए नन्दा की गीली-सी आँखों की बरौनियों से इस लोक की सारी छलनायों को धोकर पोंछ रही थी। राकेश भी भूतनाथ के पीछे आकर

खड़ा हो गया था। उससे नन्दा की सुन्दर आँखों से टपकती हुई वह प्रेमानुभूनि छिपी न रही। देखकर वह प्रसन्न होना चाहता था, पर मन-ही-मन भीतर के किसी कोने में छिपी कोई कुटिल कांटेदार अनुभूति उसे रह-रहकर कोंच रही थी कि 'वह दिव्य मुसकान तुम्हारे लिए नहीं है इसलिए तुम्हारे लिए प्रसन्नता का कोई कारण इस अवसर पर नहीं है।' और वह फिर तुरन्त गम्भीर और उदास हो गया।

"आप कहाँ रह गये थे? भोजन करने भी नहीं आये?" नन्दा अपनी उसी मार्मिक मुसकान को तनिक सान पर चढ़ाती हुई बोली: "अभी तक भूखे ही होंगे आप!"

"मेरी तनिक भी चिन्ता न किया करो बहु! मैं बड़ा स्वार्थी आदमी हूँ और अपने पेट की माँग के सम्बन्ध में सब समय सगज और सावधान रहता हूँ। अपने परिचित एक हलवाई की दूकान में मैंने पेट-भर खाना खा लिया है। कुछ कचौड़ियाँ तो मैं सवेरे ही खाकर गया था। अब इस समय तो इस कदर पेट भरकर खाया है कि हींग और अजवायन की सौंधी गन्ध की डकार अभी तक बार-बार उसकी याद दिला रही है। मैंने सोचा कि आज तुम्हारे व्रत का दिन है, राकेश ने यही बताया था, इसलिए—"

"वह बड़े भुलक्कड़ हैं। मैंने कल के लिए बताया था, कल है मेरा व्रत का दिन।"

"कोई बात नहीं, इससे बिगड़ा क्या? मैं रात के लिए भी छुट्टी का प्रबन्ध करके आया हूँ।"

"अर्थात ?"

"अर्थात अभी मैंने ठूंस-ठूंसकर खाया है।"

"ठीक! मैं कुछ और समझ रही थी।"

"पर तुम लोगों ने रात के लिए क्या प्रबन्ध किया है? राकेश तो कुछ बना न पायेगा और तुम बीमार हो!"

इसी समय राकेश को खांसी आयी। राकेश की उपस्थिति का आभास पाकर नन्दा हड़बड़ाकर उठ बैठी। अभी तक वह समझ रही थी कि राकेश नीचे ही है और वह अकेले में भूतनाथ से बातें कर रही है

राकेश की ओर देखकर उसने आदेश के स्वर में कहा "देखो जी, यह ठीक कह रहे हैं, रात के भोजन का प्रवन्ध आज घर पर नहीं हो सकेगा। तुम अभी जाओ और इन्हीं की परिचित दूकान से गरमागरम कचौड़ियां ले आओ। पहले एक कचौड़ी चखकर देख लेना कि उसमें हींग और अजवायन दोनों चीजें है या नहीं।"

"मैं अभी जाकर लाता हूँ"—कहकर राकेश ने कोट पहना और झोला पकड़कर विना किसी वहस के कमरे से बाहर निकल गया।

राकेश को लौटने में काफी देर हो गयी। नन्दा घवराने लगी। उसने अपनी घवराहट भूतनाथ को वतायी।

"इसमे चिन्ता की क्या वात है ? कोई परिचित व्यक्ति मिल गया होगा। इलाहावाद में आजकल साहित्यिक गोष्ठियों की धूम मची हुई है, किसी ने उसे भी गोष्ठी में चलने के लिए पकड़ लिया होगा।"

रात में प्रायः दस वजे राकेश लौटा। उसने वही वात वतायी जो भूतनाथ ने कही थी।

भूतनाथ कुछ समय के लिए जव कमरा छोड़कर वाहर चला गया तव नन्दा सहसा सिसक उठी। राकेश घवराता हुआ उसके पास गया और उसने पूछा: "क्या हो गया हैं ?"

"तुम विना कुछ वताये किसी गोष्ठी में क्यों चले जाते हो ? एक तो ऐसे ही मेरी तवीयत ठीक नहीं है, जिस पर तुम एक और नयी चिन्ता पैदा कर देते हो। अव से मैं तुम्हें कहीं भी नहीं जाने दूंगी।"

"नन्दा, तनिक सुनो तो सही !" क्षमा-याचना के स्वर में राकेश वोला।

"नहीं मैं कुछ भी नहीं सुनूंगी।" कहकर नन्दा और अधिक जोर से फफकने लगी।

"अरी भागवान, तनिक शान्त हो लो, ठण्डे मस्तिष्क से सोचो और सुनो"

"कहो, क्या कहना चाहते ?" शान्त होकर नन्दा ने कहा।

"देखो दुर्भाग्यवश मैं आजकल इस अनोखे कैदखाने में वन्द पड़ा हूँ, न किसी साथी से मिलना हो पाता है, न कोई साहित्यकार ही मिल पाता

है। नन्दा इस तरह से तो मैं जल्दी ही मारे घुटन के मर जाऊँगा।"

"तुमने तो अपने लिए रास्ता निकाल लिया। पर मेरी घुटन का क्या उपाय है? मैं कौन-सा रास्ता अपनाऊँ? अपने व्यक्तिगत स्वार्थ की साधना में यह क्यों भूल जाते हो कि एक दूसरा व्यक्ति भी तुम्हारी ही घुटन के साथ जुड़ा है। उसके उद्धार के लिए भी तो कोई रास्ता खोजिए कविजी! और फिर कोरे कवि-सम्मेलन तुम्हारे लिए मुक्ति का कोई उपाय नहीं खोज पायेंगे, इतना समझे रहो। यदि घुटन से पलायन ही चाहते हो तो कोई ऐसा मार्ग खोज निकालो जो दोनों के लिए सच्ची मुक्ति की दिशा का ध्रुवतारा बन सके।"

"तुम भी चलो न मेरे साथ कवि-सम्मेलनों में? कभी तुम भी अपने कॉलिज-जीवन में मेरे अनुकरण पर कविताएँ लिखने लगी थीं। फिर उसी अभ्यास में जुट जाओ। तुममें प्रतिभा है और मेरा विश्वास है कि सच्ची लगन से अभ्यास करने पर तुम एक दिन कवि-सम्मेलनों में जल्दी ही अपनी प्रतिष्ठा कायम कर सकोगी।"

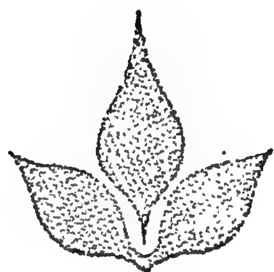
नन्दा ठठाकर हँस पड़ी। "वाह कविजी! आपने मेरी मुक्ति का बहुत ही सुन्दर और सरल उपाय खोज निकाला है। असल बात यह है कि तुम अभी तक बच्चे ही हो। निरे-नादान बच्चे! अपने काव्य परिवेश की कूप-मण्डूकता में तुम इस क़दर गर्क़ हो चुके हो कि उसके बाहर का विराट् जगत् तुम्हें एक राख के कण से भी तुच्छ लगता है। जब कभी अपनी इस असंगत और असम्भावित कल्पना के प्रति तुम्हारे मन में सन्देह उत्पन्न होने लगता है और उस अन्धकूप में अपनी सुरक्षा भी खतरे में पड़ी हुई लगती है, तब तुम अपने छिछले मन का छिछला बल बढ़ाने के लिए बाहर के छोटे-छोटे मेंढ़कों की भीड़ को इकट्ठा करके उनके बीच में अपना सिर छिपाने की कोशिश करते हो और उनके संसर्ग में क्षणिक सन्तोष पाकर फिर अपनी कूप-मण्डूकता की 'महत्ता' का प्रचार करने लगते हो! तुम पंचतन्त्र के उस 'गंगदत्त मेंढक' से भी अधिक गिरे हुए मूर्ख और कायर हो—जो अपनी गलती समझकर सावधान हो गया था और अपनी कूप-मण्डूकता से मुक्ति पा गया था।"

"किमेतत्? क्या है वह कथा?" राकेश ने नन्दा की बात को

मजाक में उड़ाने के उद्देश्य से कहा।

नन्दा खीझ उठी और तमककर बोली; "हटो मेरे सामने से। मैं आराम करना चाहती हूँ।"

इतने में भूतनाथ आ गया। बोला, "राकेश, दस बज रहे हैं, अब खाना खा कर आराम करो।"



राकेश ने कमरे में एक किनारे एक शीतलपाटी बिछायी और उसके ऊपर उसी तरह की एक पुरानी कालीन बिछा दी। तीन पत्तलों में कचौड़ियाँ परोसकर उन्हें चटाई के पास ही लगा दिया। भूतनाथ बोला : "तीन पत्तल क्यों लगाये ? मैं तो नहीं खाऊँगा, क्योंकि मैं खाकर आया हूँ। एक पत्तल हटा लो।" यह कहकर भूतनाथ बाहर बरामदे में चला गया, जहाँ चतुर्दशी की चाँदनी पूरी उदारता से छिटक रही थी। टूटी कुरसी को बाहर ले जाकर वह उस पर जमकर बैठ गया और कभी चकोर की तरफ ऊपर नीले आकाश पर जमे हुए चन्द्रमा की ओर देखता था और कभी दूर क्षितिज तक बड़ी उदारता से चिट्टी-सी चादर की तरह फैली हुई ज्योत्स्ना के रहस्यमय विस्तार को देख-देखकर मन-ही-मन मगन हो रहा था। भीतर रेडियो खोल दिया गया था। समाचार प्रसारित हो रहे थे। एक समाचार में यह बतलाया गया था कि दो अमरीकी चन्द्र-यात्री चन्द्रमा की ऊबड़-खाबड़ पहाड़ी जमीन पर टहल रहे हैं। भूतनाथ समाचार सुनकर विस्मय-विमुग्ध होकर चन्द्रमा की ओर एकटक आँखें

गड़ाये रहा, जैसे उन दो व्यक्तियों को चर्म-चक्षुओं से देख पाने की आशा किये बैठा हो ? और फिर विचित्र और बेमेल रहस्यात्मक सपनों में खो गया।

जब राकेश खाकर हाथ धोने आया तब उसने भूतनाथ को लक्ष्य करके कहा : "किन विचारों में मगन हो भैया ?"

भूतनाथ पीछे की ओर गरदन घुमाकर बोला : "ओ भाई राकेश, तुमने अभी चन्द्र-यात्रियों की खबर तो सुनी ही होगी ? क्या-क्या ठाठ हैं इस मनुष्य नामक जीवधारी के ! एक ओर तो यह बड़प्पन में ईश्वर से होड़ लगाता है और दूसरी ओर अपने को छोटे-छोटे कीड़ों से भी तुच्छ साबित करने में कोई कसर नहीं रखता। 'अणोरणीयान् महतो महीयन' इसी को कहते हैं।"

"अरे भैया, इस ठण्ड में तुम्हारी यह रहस्यात्मक कल्पना तुम्हें खा जायेगी। चलो, भीतर चलें और अँगीठी के पास बैठकर कुछ गपशप करें।"

"तुम ठीक कहते हो। यही अच्छा रहेगा। चलो !" कहकर भूतनाथ एकाएक खड़ा हो गया। भूतनाथ बरामदे से उठकर कमरे के भीतर चला गया और राकेश नीचे जाकर एक अँगीठी में लकड़ी के बुझे हुए कोयले भर लाया और लाकर भूतनाथ के आगे उसे रख दिया।

"खूब दहक रहे हैं कोयले !" व्यंग्य के लहजे में भूतनाथ बोला। "अरे भैया, मुझ-जैसे शीत-प्रवृत्ति से यह कोयले जल ही नहीं पाते। इसे आप ही दहका पायेंगे।"

भूतनाथ अँगीठी उठाकर बरामदे के उत्तरवाले कोने में ले गया। दो-एक रद्दी अखबार कागज उठा लाया था। उन्हें भी जरा गेंद की तरह बनाकर उसने अँगीठी के मुँह के भीतर ठूँस दिया; फिर एक दियासलाई से कागज को जलाकर, कुछ देर यों ही जलने दिया। उसके बाद एक छोटे पंखे से हल्के-हल्के हवा करना शुरू किया। जब दो कोयलों ने आग पकड़ ली तब तेजी से पंखा चलाया जाने लगा। और राकेश के देखते-ही-देखते अँगीठी के सारे कोयले पूरी तरह से दहक उठे। भूतनाथ अँगीठी को उठाकर भीतर ले गया। फर्श में बिछी हुई दरी और नकली

कालीनों को दोनों ओर से हटाकर पीछे की ओर लपेट दिया और बीच में नंगे फर्श के ऊपर अँगीठी रख दी गई। अँगीठी की एक ओर राकेश वैठा और दूसरी ओर भूतनाथ। राकेश ने नन्दा को जोर से पुकारकर जगाया और कहा : "नन्दा, देखो, क्या वढ़िया अँगीठी जलायी गयी है। आओ, वैठो तुम भी जरा आग तापो।"

नन्दा भी पलंग से उठकर नीचे चली आयी और राकेश की बगल में वैठ गयी।

राकेश वोला—"इस समय कोई वढ़िया किस्सा सुनानेवाला हो तव सुनने का मजा है। भैया, तुम्हीं सुनाओ न कोई लम्बा-सा किस्सा। अपना जो किस्सा तुम उस दिन सुना रहे थे वह वहुत ही दिलचस्प था। उसी को आगे वढ़ाओ न, भैया। तव है मजा जाडे की रात में आग तापने का।"

"ठीक है। किसी का घर जले और कोई तापे?"

"यह तुम क्या कह रहे हो, भैया? किसका घर जल रहा है?" राकेश ने पूछा।

"मेरा और मेरी जातिवालों का घर जल रहा है और शेष सव लोग खूव मजे में ताप रहे हैं। सारा देश, सारा समाज ताप रहा है।"

"किस आधार पर तुम ऐसा कह रहे हो, भैया।" वडे इत्मीनान की सांस खीचते हुए राकेश ने कहा।

"अरे आधार की वात तुम्हें सव से अधिक मालूम है। वात वही है जिस आधार पर तुमने सवेरे मेरे हाथ की कचौड़ियां नहीं खायीं और व्रत का वहाना वता दिया। इस वात की भी याद तुम्हें दिलानी होगी?"

"नहीं भैया वात ऐसी नहीं है।" राकेश वोला।

"अरे चुप भी रहो, अव अधिक न जलाओ मेरे जन्म से ही जले हुए दिल को। पर छोड़ो इस चर्चा को। यह 'दिलचस्प' नहीं है। लो सुनो, सुनाता हूँ एक किस्सा—किस तरह मेरे समान अछूतों का—

"अछूत नहीं, हरिजन कहो, भैया!"

"जले पर नमक न छिड़कोगे तो क्या हानि होगी?"

"लो मैं चुप हूँ। तुम सुनाओ।"

"मनुष्य-समाज की यह जन्मजात प्रवृत्ति (या विकृति) है कि अपने

से हीन परिस्थितियों में जीनेवाले व्यक्तियों को पहले तो वह पालता है, फिर उनमें यह आदत डालता है कि वे उन आपेक्षिक रूप से अच्छी परिस्थिति में जीनेवालों के पर पूरी तरह निर्भर रहने के आदी हो जायें और स्वयं निकम्मे बने रहने में ही सुख का अनुभव करें। इससे अच्छी परिस्थितियों में जीनेवालों के अहम की तुष्टि होती है और भौतिक लाभ भी। और हीन परिस्थितिवाले यह सोचने-समझने के आदी हो जाते हैं कि उनकी भलाई ऊपरी समाज की मूक सेवा करते रहने में है और यही सामाजिक न्याय है। अमेरिका में नीग्रो लोगों का इतिहास यही बताता है और हमारे यहां तथाकथित हरिजनों की उत्पत्ति और विकास का इतिहास भी स्पष्ट ही यही बताता है। यह देखकर आश्चर्य होता है कि इस घोर अन्यायपूर्ण सामाजिक न्याय की परम्परा किस तरह अतल में जड़े पकड़ लेती है और सुदूर भविष्य में जब कभी प्रगतिशील तत्व जोर पकड़ने लगते हैं तब भी वह अमानुषिक परम्परा टूटने के लक्षण नहीं दिखाती। हजारों वर्ष पहले भारतीय समाज के जिस असवर्ण सम्प्रदाय की सष्टि की थी और उसे हीन-से-हीन परिस्थतियों में जीवन बिताने के लिए बाध्य किये जाने की जो परम्परा स्थापित की थी वह आज के प्रगतिशील युग में भी वैसी ही मजबूती से कायम है और देश के बड़े-बड़े ज्ञानियों, सन्तों और महात्माओं के निरन्तर प्रयत्नों के बावजूद उस प्रथा में तनिक भी दरार नहीं आने पा रही है, बल्कि उलटे उसकी विकटता उत्तरोत्तर वृद्धि को ही प्राप्त होती दिखती है। आज भी हम देखते है कि हरिजनों की विवशता किस अन्धेर की सीमा तक पहुँच गयी है। गांव-गांव से समाचार मिल रहे हैं कि हरिजनों की पूरी बस्ती की बस्ती किस निर्ममता से सवर्णों द्वारा जलायी और ध्वस्त की जा रही हैं। हरिजन अबलाओं पर नृशंस अत्याचार किये जा रहे हैं और शहरों या गांवों की शिक्षा-संस्थाओं में हरिजन छात्रों की हत्याएँ की जा रही हैं। मैं रात-दिन इसी चिन्ता में घुला जा रहा हूँ कि कैसे अपनी जाति को इस हीनता, दुर्बलता और विवशता की स्थिति से मुक्त कराया जा सकता है। यह समस्या ऐसी विकट और व्यापक है कि इन अत्याचारों के लिए किसको दोषी ठहराया जाय, यही बात समझ में नहीं आती,

उद्धार की बात तो दूर रही। शिक्षा-संस्थाओं को ही लो। विभिन्न स्थानों के प्रकाशित समाचारों से यह पता चला है कि वहाँ हरिजन छात्रों की हत्या तक की जा रही हैं। इन हत्याओं के लिए अध्यापकों को दोष दें, अधिकारियों को या छात्रों को? छात्रों को दोष इसलिए नहीं दिया जा सकता कि उन्हें इस इतिहास का पता नहीं रहता कि उक्त दो वर्गों की उत्पति कब और क्यों हुई? कारण यह है कि उन्हें किसी भी युग के इतिहास में कोई रुचि नहीं है, बल्कि यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि उन्हें किसी भी विषय के अध्ययन की ओर कोई लगाव ही नहीं रह गया है। वे परम्परा से प्राप्त इस संस्कार में बचपन से पले हैं कि जो अछूत वर्ग है उसकी वास्तविकता उसके नाम से ही स्पष्ट है और इस वर्ग से घृणा करना, उसको मिटाना ही सभी सवर्णों का कर्त्तव्य है। उनकी समूची शिक्षा केवल इस तथ्य की जानकारी तक सीमित रह गयी है। इसका कारण जहाँ तक मैं समझता हूँ यह है कि आज सभी वर्ग अपने छोटे-छोटे तात्कालिक स्वार्थों की सिद्धि को ही जीवन का चरम लक्ष्य समझने लगे हैं। उन छोटे-छोटे स्वार्थों की तात्कालिक सिद्धि के परे जीवन के और भी महत्त्वपूर्ण लक्ष्य हैं, यह बात न तो छात्रों को कोई समझाना चाहता है और न वे ही समझने के इच्छुक हैं। अधिकारी वर्ग समझाना चाहता है कि उसके लक्ष्य की पूर्ति हो चुकी है। अपनी-अपनी कुरसियों से चिपके रहने में ही वे अपना परम कल्याण मानते हैं। इसके अतिरिक्त और किसी भी बात में दिलचस्पी लेना बहुत बड़ी मूर्खता है। इसलिए उस मूर्खता से बचे रहने में ही उनका चरम कल्याण है, यह बात वे कसकर गाँठ बाँधे, बैठे रहते हैं। हरिजनों के पक्षपाती नेता हरिजनों की दुर्गति के लिए सारा दोष सरकार पर मढ़ने में अपने कर्त्तव्य की इतिश्री मानते हैं। प्रत्येक सरकार की अपनी सीमा होती है। हमारी सरकार तो गान्धीजी की परम्परा में ही पली है। इसलिए उसने हरि-जनोद्धार के उद्देश्य से जो भी सम्भव कदम उठाये हैं, देश का हरि-जनोद्धार आन्दोलन केवल उतने ही तक सीमित रह गया है। पर हजारों वर्षों की सड़ी-गली परम्परा में पले हुए जन-मानस को चीरकर उसमें मूलगत परिवर्तन लाने का असाध्य काम केवल सरकारी संस्थाओं तक

ही सीमित रह जाने से जनता को प्रगतिशील नहीं बनाया जा सकता और न जन-मानस का मूलगत परिष्करण ही इस उपाय से सम्भव है। जिस देश की जनता हर सुधार के लिए केवल सरकार पर निर्भर रहने की आदी हो जाती है, उस देश को एकदम जड़, मृतवत्, निश्चेष्ट और निश्चेतन समझना चाहिए।"

"तब क्या है देश के दलितों का उपाय ? तुमने इस सम्बन्ध में कुछ सोचा है !" राकेश ने जम्हाई लेते हुए पूछा। यह स्पष्ट था कि जिस विषय की चर्चा भूतनाथ छेड़ बैठा था वह राकेश की रुचि के तनिक भी अनुकूल नहीं पड़ रही थी।

"मैंने अभी तुम्हें बताया न," भूतनाथ कुछ खीझ-भरे स्वर में बोला, "मैं दिन-रात केवल इसी एक प्रश्न पर सोचता रहा हूँ। मैंने एक अछूत होने के नाते जीवन में पग-पग पर जो अपमान और तिरस्कार सहे हैं उन्होंने मेरे हृदय को छलनी बना दिया है। यह मेरा सौभाग्य या दुर्भाग्य—जो भी कहो, था कि मैं तीव्र संवेदना और अनुभूति का तीखापन लेकर पैदा हुआ। कहते हैं, मेरे अति-पूर्वज सन्त रैदास के ही नाते-रिश्तेदार थे। तनिक सोचो, उस महान् रैदासी परम्परा का व्यक्ति समर्थ वर्ग के पैरों के जूतों की नुकीली कीलों के तले रौंदा, कुचला और दुरदुराया जाय, भाग्य की इस विडम्बना को मैं तो अपनी यथार्थवादी दृष्टि से किसी तरह सहन किये जा रहा हूँ। पर मेरे लाखों-करोड़ों दूसरे भाई-बन्धुओं का जीवन तो सहज ही सहनीय नहीं है। उनकी सामूहिक पीड़ा के निराकरण का कोई भी उपाय मैं नहीं देख पा रहा हूँ और न निकट भविष्य में उनके उद्धार का कोई रास्ता निकल आयेगा, इस आशा का कोई छोटा-सा कण भी मुझे नहीं दिख रहा है। हजारों वर्षों की जो परम्परा आज के प्रगतिशील युग में भी उसी तरह कायम बनी हुई है उसके निराकरण की समस्या कोई खेल नहीं है। इस समस्या का हल तभी निकल सकेगा जब कोई व्यापक भूकम्पी क्रान्ति सारे देश को एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक हिला दे। पर क्रान्ति किसी भी सरकार द्वारा नहीं लायी जा सकती, फिर चाहे वह कैसी ही प्रगतिशील क्यों न हो। क्रान्ति तो जन-मानस के ही भीतर के प्राकृतिक विस्फोट

द्वारा सम्भव हो सकती है। फिर भी मेरे भीतर इतनी-सी किरणें कभी-कभी अवश्य चमकती दिखाई देती हैं कि यदि स्थिति ऐसी ही रही, तो जन-समाज में एक-न-एक दिन वह विस्फोट अवश्य ही उत्पन्न होकर रहेगा और तभी हरिजन-वर्ग अपना जन्मसिद्ध न्यायाधिकार प्राप्त करेगा। हर जड़ता प्राप्त सामाजिक स्थिति की एक सीमा और अवधि होती है। उस सीमा की अवधि का अन्त एक-न-एक दिन होकर ही रहेगा। और वह दिन बहुत दूर भी नहीं है। क्योंकि मेरे ही स्वजातीय हरिजन-बन्धु समर्थ वर्ग के सीमातीत अन्याय और अत्याचारों को पिछले युगों की तरह चुपचाप सहते चले आने के पक्ष में अब नहीं रहे और न वे अपना सिर सदा नीचे की ओर ही झुकाते रहने के पक्ष में हैं। वे आज भी नितान्त चुप, शान्त और सहनशील अवश्य लगते हैं, पर वास्तविकता यह है कि उनके भीतर, अदृश्य रूप से ही सही, क्रान्ति के शोले भड़क रहे हैं और उनकी चिनगारियों को वे बुझने नहीं देना चाहते। इसलिए, मेरा विश्वास है कि एक दिन अचानक ऐसा आयेगा जब सारा दलित वर्ग, बिना किसी पूर्व सूचना के, स्वयं अपने ही मौन प्रयत्नों से क्रान्ति के शिखर पर खड़ा दिखाई देगा। और वह क्रान्ति वैसी ही होगी जैसी सन् '१७ में रूस की जनता द्वारा विस्फुटित हुई थी। उस क्रान्ति का प्रभाव और प्रताप खण्ड-खण्ड या छिटपुट रूप में व्यक्त नहीं होगा, वह अपनी प्रचण्डता की लपेट में सारे प्रतिक्रियावादी और विरोधी तत्त्वों को जड़ से मिटाकर ही दम लेगी। जन-मानस से प्रस्फुटित होनेवाली सामूहिक लपटें इसी तरह सर्वध्वंसकारी होती हैं। नया निर्माण बिना ऐसी प्रचण्ड शक्तियों के प्रस्फोट से सम्भव ही नहीं होता—यह प्रकृति का नियम है।"

जब भूतनाथ का धारा-प्रवाह थमा, तब राकेश ने २५ किलोवाट-वाली बत्ती के प्रकाश में देखा कि उसका चेहरा एक व्यापक अग्निकाण्ड के-से प्रकाश से चमकता हुआ लाल हो उठा है। राकेश देखकर डर गया और भय से आँखें नीचे फर्श की ओर किए रहा। अँगीठी के दहकते कोयलों के ऊपर सफेद राख की परतें जमने लगी थीं, हालाँकि उसकी आँच में तनिक भी कमी नहीं आने पायी थी।

"अब आराम करो! बहू की तबीयत ठीक नहीं है। मैं बेनतलब

तुम्हारे आगे आयँ-वायँ बकता चला गया और तुम्हें 'बोर' करता रहा—यह जानते हुए भी कि तुम्हें इस तरह की बातों में कोई दिलचस्पी नहीं है। पर मेरे लिए तो यह जीवन-मरण की समस्या है, इतना तो मानोगे ही। मेरी जिस सामाजिक स्थिति ने मुझे भूत बनकर जीने को बाध्य कर रखा है, वह कोई साधारण स्थिति नहीं है, इतना तो बिना कहे भी स्पष्ट है। अब कल बताऊँगा तुम्हें अपने जीवन का एक रोचक अध्याय। तब तक के लिए नमस्कार!" कहकर भूतनाथ एकाएक उठकर अपने कमरे में चला गया।



दूसरे दिन भूतनाथ ने दिन का खाना बाहर ही खाया। शाम को भी जब वह बाहर जाने लगा तब नन्दा ने उसे रोका और अनुरोध किया: "आज आप बाहर खाना न खायें। आज मैं घर ही पर कचौड़ियाँ बनाकर आपको खिलाऊँगी। आज इनका जन्म-दिन है।"

"हाँ! यह बात है! तब तो तुमने मुझे सवेरे ही बता दिया होता! मैं दिन को भी यहीं खाता। कहाँ है राकेश? मैं उसे बधाई दूँगा।" और वह "राकेश! राकेश!" कहकर ऊँची आवाज में पुकारने लगा। राकेश बाहर निकल आया। बड़ी विनम्रता से बोला: "कहिए भैया, क्या आज्ञा है?"

"अरे आज्ञा-वाज्ञा कुछ नहीं। मैं तुम्हें बधाई देता हूँ तुम्हारे जन्म-दिन के अवसर पर। दिन तो अब चला गया है, इसलिए अब जन्म-

रात्रि ही मनायी जायगी। आज मैं रात्रि में घर ही पर खाना खाऊँगा, बहू ने आग्रह किया है।" कहकर वह चलने लगा। नीचे रसोई-घर में नन्दा भोजन की तैयारी में जुटी थी। भूतनाथ दूर से ही बोला: "बहू, मैं अभी चल रहा हूँ, जल्दी ही लौटूंगा। खाना घर ही पर खाऊँगा।"

"देखिए, भूलिएगा नहीं।" कहकर नन्दा ने उसकी ओर दोनों हाथ जोड़ दिये।

रात को जब भूतनाथ की प्रतीक्षा करते-करते साढे दस बज गये और वह नहीं आया तब नन्दा परेशान होने लगी। राकेश ने कहा: "सारी कचौड़ियां मिट्टी हुई जा रही हैं। आओ, हम दोनों खाना खा लें। उस पागल भूत की प्रतीक्षा में मैं अपने जन्म-दिन की शुभ-रात्रि में भूखा ही रह जाऊँ क्या?"

उसके स्वर में कुछ तीखापन था। नन्दा ने कचौड़ियां फिर से गरम कीं। दो थालियों में परोसा लगाकर वह जब ऊपर आयी तब राकेश अँगीठी में कोयले दहकाने में व्यस्त था।

अँगीठी भीतर रखकर, उसके दोनों ओर बैठकर जब दोनों खाना खाने लगे, तब राकेश मारे प्रसन्नता के खिल उठा। वह आनन्द से उछलना चाहता था। पर उछला नहीं। बोला—"वाह, बहुत ही बढ़िया कचौड़ियाँ बनायी हैं तुमने!"

"सभी मसाले डाले हैं—हींग और अजवायन से लेकर काली और लाल मिर्च तक।"

"अब तो पूरे साल-भर रात में यही खाना खिलाया करो। मटर-टमाटर की सब्जी भी कुछ कम चटपटी नहीं है। और यह चटनी काहे की बनायी है? यह तो धनिये की चटनी है, जिसमें जीरे के अलावा सिर्फ हरा मिर्च पड़ा है, वाह, लहसुन और प्याज की-सी यह गन्ध क्या है?"

"वही है, जो तुम बता रहे हो!"

"धत्तेरे की, तुमने आज के शुभ-दिन में मुझे भ्रष्ट कर दिया। मेरे

खानदान में कभी किसी ने लहसुन-प्याज नहीं खाया। और तुम्हारे पिता के कुल में भी किसी ने कभी नहीं खाया होगा। तव आज तुम्हें क्या सूझी ?"

"सच वात वताऊँ ? बुरा तो न मानोगे ?"

"कतई नहीं। वताओ !"

"मैंने यह सव खाना आज तुम्हारे लिए नहीं, तुम्हारे भैया के लिए वनाया है। जन्म-दिन को केवल अपनी ही पेट-पूजा करना शास्त्र-विरुद्ध है। अतिथि देव की तुष्टि सव से पहले आवश्यक है। वह सभी मसाले वड़े शौक से खाते हैं। इसलिए यह सव मैंने किया है।"

"ठीक ! और तुम प्याज-लहसुन खा सकती हो, यह मैंने पहली वार जाना।"

"हर्ज क्या है, लहसुन केवल मसाला नहीं, दवा भी है। वादी मारता है। मैंने इसके पहले रसोई से लहसुन कभी न चखा, न वनाया। पर पिताजी पेट की खरावी के लिए 'लहसुनाष्टक' नाम का कोई चूर्ण वनाया करते थे। वचपन में उसे खूव खाया करती थी। उसका स्वाद मुझे वहुत अच्छा लगता था। आज, जाने क्यों, मुझे वचपन के उन्हीं दिनों की याद आयी और मैंने एक सब्जीवाले से, जो हमारे दरवाजे तक आया था, लहसुन खरीद लिया।"

"ठीक है, चीजें तो वहुत अच्छी वनी हैं।" राकेश ने फिर अपनी पिछली वात दुहरायी। वातें करते-करते वह इतनी अधिक कचौड़ियाँ खा गया कि नन्दा को उसे याद दिलाना पड़ा कि "पेट के अन्दाज से खाओ, अधिक खाने से कहीं पेट में कोई गड़वड़ी पैदा न हो जाय और पेट में अधिक लहसुन-प्याज पहुँचने से 'धर्म' कहीं अधिक भ्रष्ट न हो जाय !"

"वह तो तुमने दवा डाल रखी है, इसलिए पेट की कोई चिन्ता मुझे नहीं है। पर तुमने तो विल्कुल खाया ही नहीं, एकदम हाथ समेट लिए हैं। क्या वात है ? भूख नहीं है क्या ?"

"सवेरे ज्यादा खा लिया था।"

हाथ-मुँह धोकर दोनों अँगीठी को घेरकर कमरे में वन्द हो गये।

अँगीठी की गरमी के कारण कुछ अलसाने से लगे थे कि नीचे किसी

ने दरवाजा खटखटाया और फिर कानों को चीरती हुई-सी सुपरिचित आवाज सुनाई दी : "राकेश, दरवाजा खोलो !"

राकेश नीचे दरवाजा खोलने गया। दरवाजा खोलते ही भूतनाथ एक और आदमी को साथ लिए हुए भीतर घुसा।

"यह मेरे मेहमान हैं। मेरे नये रिश्ते के चचा लगते हैं। आओ चचा। यह मेरा मित्र राकेश है। आजकल मैं इसी के साथ ठहरा हुआ हूँ।"

चचा ने और राकेश ने परस्पर हाथ जोड़े। भूतनाथ ने ऊपर जाकर अपने कमरे की बत्ती जलायी और फिर उसके लिए भोजन का प्रबन्ध करने लगा।

एक तख्त पर बिस्तर बिछाकर, चचा को लिटाकर भूतनाथ राकेश के कमरे में गया। नन्दा ने कहा : "बड़ी देर कर दी आपने !"

"अरे भाई, अचानक चौक में चचा मिल गये। मेरी ही तलाश में भटक रहे थे बेचारे। मैंने दुकान में खाना खिलाया—यानी खुद भी खाया और फिर दोनों ने चाय पी।"

"घर पर खाने का वचन देकर भी आपने यह अच्छा नहीं किया। चचा भी यहीं खा लेते," नन्दा का लहजा शिकायत-भरा था, पर आवाज भरी हुई-सी लग रही थी।

"दुकान पर अपने चचा का साथ देने के लिए कुछ चख-भर लिया होगा। अभी कुछ भूख अवश्य शेष होगी। यहां भी कुछ चख लीजिए।" कहकर वह प्रश्न-भरी दृष्टि से भूतनाथ की ओर देखने लगी।

"अच्छी बात है। तब दो कचौड़ियाँ ले आओ और !"

नन्दा ने पहले ही से कढ़ाई समेत कचौड़ियाँ ऊपर ही लाकर रख दी थीं और थोड़ी-सी पीठी भी। कढ़ाई उठाकर वहीं अँगीठी पर रख दी। उसमें अभी काफी घी बचा हुआ था। घी जब पिघल गया और धुँआ देने लगा तब उसने एक-एक करके चार कचौड़ियां उसमें डालकर उतारीं। उसके बाद सब्जी का भगौना भी गरम किया और तब एक थाली में बड़े करीने से परोसा लगाया।

भूतनाथ ने राकेश से भी अधिक प्रशंसा की सभी चीजों की, और

कहा, "क्या बताऊँ, बड़ा ही दुर्भाग्य रहा। दुकान में खाना सचमुच ठीक नहीं था। इतनी बढ़िया चीजों के लिए भाग्य भी बड़ा ही चाहिए, मुझ-जैसे छोटे और खोटे आदमी के नसीब में ये अमृत-सदृश व्यंजन नहीं लिखे हैं। इसलिए तुम्हारे आग्रह करने पर भी समय पर न पहुँच सका। खैर फिर कभी सही !"

राकेश दिन में नन्दा के कहने पर एक किलो बढ़िया मिठाई लोकनाथ से ले आया था। एक बड़े से प्लेट में चुन-चुनकर नन्दा ने मिठाइयाँ लगायीं और भूतनाथ के आगे बढ़ाती हुई बोली, "यह चचा को दे दीजिए।"

भूतनाथ कोई बहाना बनाकर इनकार करने लगा था, पर नन्दा बोली : "यह शकुन है, इसके लिये 'नहीं' करना मना है।" तब भूतनाथ ने चुप-चाप मिठाई ले ली और 'चचा' के पास चला गया।

जब लौटकर आया तब राकेश और नन्दा भी अँगीठी को दोनों ओर से घेरकर इत्मीनान से आग ताप रहे थे। भूतनाथ के आते ही दोनों ने उसके लिए आरामवाली जगह बनायी। भूतनाथ भी आराम से बैठ गया।

"सर्दी सचमुच बढ़ गयी है, और इधर दिन-पर-दिन बढ़ती जा रही है।" भूतनाथ दोनों हाथों की हथेलियाँ अँगीठी के ऊपर फैलाता हुआ बोला।

कुछ देर चुप रहने के बाद राकेश ने कहा, "भैया, कल आपने वादा किया था कि आज अपने जीवन का एक रोचक अध्याय सुनायेंगे। कृपया आज कोई भाषण न दें, सिर्फ किस्सा ही सुनावें।"

"ठीक है, तुम्हारी बात मैं समझ रहा हूँ। भाषण देना अब मेरा स्वभाव ही बनता चला जा रहा है। इतनी बातें मेरे भीतर जमी हुई पड़ी हैं कि इच्छा होती है कि ऐसा लम्बा भाषण दूँ जो समुद्र के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक की यात्रा पूरा कर चुकने के बाद भी समाप्त न हो। पर आज नहीं, आज केवल किस्सा ही सुनो।"

"हाँ, तो अब सुनाइए। देर क्यों ?"

"लो सुनो, किस्सा लखनऊ का है। जब मैं चम्बल घाटी में अपना

घर छोड़कर बाहर के जीवन में मुक्त भाव से घुलने-मिलने के इरादे से निरुद्देश्य भटकता हुआ पहली बार लखनऊ आया तब अपने रिश्ते की एक दीदी के यहाँ ठहरा। वे लोग लखनऊ में कुछ वर्ष पहले ही से जमे हुए थे। उनके पति ने वहाँ जूते बनाने का काम शुरू कर दिया था और अमीनाबाद में एक छोटी-सी दूकान भी उन्हें भाग्य से मिल गयी थी। देखो राकेश, इतना अनुभव तो तुम्हें अब तक निश्चय ही हो चुका होगा कि मनुष्य के जीवन को बनाने या बिगाड़ने में भाग्य का भी बहुत बड़ा हाथ होता है। भाग्य और संयोग ये दो बहुत ही महत्त्वपूर्ण तत्त्व हैं—जीवन की सहज गति को एकदम रोक देने या उसे अनुकूलता के साथ आगे बढ़ाने के लिए। तुम जो नन्दा को लेकर भाग निकले और इलाहाबाद ही आने का निश्चय तुमने किया और तिस पर शहर के हजारों मकानों को छोड़कर इसी मकान में आ पहुँचे यह विशुद्ध संयोग नहीं तो और क्या है! यही बात मेरे जीवन की प्रत्येक महत्त्वपूर्ण घटना के सम्बन्ध में कही जा सकती है। खैर, मैं कह रहा था दीदी की बात। जीवन में मुझे एक ही दीदी मिली है। अपनी कोई बहन न होने से मैंने उसे भाई का पूरा स्नेह और श्रद्धा दी। और केवल अपनी सगी बहन की तरह ही नहीं, अपनी माँ से भी अधिक मान्यता मेरे मन ने उसे सहज ही दे दी। उसका व्यक्तित्व बहुत ही आकर्षक था। एकदम अनपढ़ होने पर भी जीवन के गूढ़ रहस्यों के भीतर की गहरी पैठ उसमें थी। उसकी अन्तर्दृष्टि जितनी ही आश्चर्यजनक थी, बाहरी दृष्टि भी उतनी ही सुलझी हुई थी। सवर्णों में भी जो स्त्रियाँ ऊँचे, प्रतिष्ठित, सुशिक्षित और धनवान कुलों की होती हैं उनसे भी अधिक सम्भ्रान्त और सुसंस्कृत था उसका व्यक्तित्व। उसकी वाणी में ऐसा तेज और गाम्भीर्य था कि लगता था कि वह अपने सहज अधिकार से संसार के किसी बड़े-से-बड़े पदवाले व्यक्ति को भी आदेश दे सकती है। ऐसा आदेश, जिसकी अवज्ञा कर सकने का साहस ही किसी में नहीं हो सकता। उसकी आदेश-भरी वाणी सुनने पर लगता था जैसे कोई पौराणिक या तान्त्रिक देवी किसी जड़-मन्दिर के भीतर स्थापित किसी पत्थर की देवी-मूर्ति में सजीव और सप्राण अवस्था में अवतरित होकर मन्दिर छोड़कर मानव-कल्याण के

लिए बाहर निकल पड़ी हो। मेरी बात पर विश्वास करो, मैं तनिक भी अतिरंजना से नहीं बोल रहा हूँ। काश, तुमने कभी उस महामहिम नारी को प्रत्यक्ष देखने का सौभाग्य पाया होता।

जो भी हो, मैं कह रहा था कि दूसरी जगह कहीं ठिकाना न मिलने पर जब मैं पता लगाकर उसके मकान में पहुँचा तब वह मेरा परिचय जानकर शाब्दिक अर्थ में हर्ष से उत्फुल्ल हो उठी। उसने छुटपन में मुझे अपनी गोद में खेलाया था। यह उसी ने मुझे बताया था। मेरे पिताजी के प्रति वह अत्यन्त भाव-भीनी भक्ति-भावना रखती थी। बचपन से ही उनके पास बैठे रहने और उनके मुख से निकली सन्त-वाणी और निर्गुन संगीत सुनते रहने में बड़ा सुख मिलता था। वह स्वयं भी जैसे जन्मजात सन्त नारी थी।

मैं जब भाग्य से ही उसके चरणों के आश्रय में आ पहुँचा तब अपने को धन्य मानने लगा ओर उसके मुँह से निकली हुई एक-एक बात मेरी रगों में एक अजीब-सी पुलक का संचार कर देती थी।

जवानी के दिनों में मैं हरिजनों की दयनीय स्थिति पर सब से लम्बी-लम्बी बातें किया करता था और उनका उद्धार कैसे हो, इस विषय में मौके-बेमौके चर्चा चलाता रहता था। एक दिन जीजी से इसी विषय पर सम्बन्धित किसी बात पर उलझ पड़ा। मैंने क्या कहा था यह तो मुझे याद नहीं, पर जीजी ने जो बात कही थी उसका अक्षर-अक्षर मेरी स्मृति में अभी तक ताजा है।

जीजी ने कहा, 'देखो भाई, सब से पहले हम 'अछूतों को यह बात गहराई से समझ लेनी होगी कि अपनी हालत के लिए सवर्णों या देश के नेताओं या सरकार को दोष देने के बजाय अगर सब अपने भीतर गहराई से देखें तो पता चलेगा कि हमी लोग अपने अछूतपन को कायम बनाये रखने के लिए दोषी ठहरते हैं। क्या यह सच नहीं है कि हरिजनों के बीच भी ऐसे बहुत-से (बल्कि सभी) लोग हैं जो अपने से गिरी हुई हालतवाले हरिजनों को अछूत मानते हैं।'

मैंने जब इस बात के स्पष्टीकरण के लिए कहा तब जीजी बोलीं: 'क्या हम चमार लोग अपने से गिरी हालतवाले भंगियों या सफाई के

पूरी तरह जाग उठा। मैंने कहा 'अच्छी बात है, तुम उस लड़की को मुझे एक बार दिखा दो। मैं तुरन्त ही अपने निश्चय की बात तुम्हें बता दूँगा।'

'तुम मुझे ललकार रहे हो! मुझको! मैं भीमसेनी हूँ। कभी आधी बात भी झूठ या गलत नहीं बोलती। तो चलो अभी नीचे मेरे साथ।' कहकर जीजी बरबस मेरा हाथ पकड़कर नीचे जैसे घसीटती हुई ले गयीं। तब नीचे आँगन में जमादार की लड़की झाड़ू लगा रही थी। जीजी ने संकेत से बता दिया कि वह लड़की है। काफी देर तक मैं उस का मुँह ही नहीं देख पाया। उसकी पीठ हमारी ओर थी। जब एक बार उसने किसी कारण से पीछे की ओर (यानी हमारी ओर) मुँह मोड़ा तो उसके अद्भुत रूप की बिजली ने मेरी आँखों में सचमुच की चकाचौंध लगा दी। मैंने आँखें क्षण-भर के लिए बन्द कर लीं। फिर जीजी की साड़ी का पल्ला पकड़ते हुए कहा, 'अब ऊपर चलो, जीजी!' ऊपर पहुँचकर दीदी के पूछने पर मैंने कहा, 'यह तो साक्षात् देवी लगती है! ऐसा तेजस्वी रूप तो मैंने किसी सवर्ण जाति की लड़की में भी कभी नहीं देखा।'

'तो तुम इससे शादी करने के लिए राजी हो?'

'मैंने कहा, मैं अवश्य ही इससे शादी करूँगा। इसी से और किसी भी लड़की से नहीं।'

'तो चलो, अगले ही महीने कोई दिन तय करके मैं शादी की सारी जुगत किये देती हूँ।'

'पर एक बात की दिक्कत देख रहा हूँ, जीजी।'

'लो, तुम फिर मुकरने लगे। पहले खूब सोच और समझ लो। सारे पहलुओं पर गौर कर लो। कसम खाना। किस बात की दिक्कत बता रहे हो?' जीजी ने कहा।

मैंने कहा, 'जीजी, बात साफ और सच यह है कि शादी करने के लिए मेरे पास भी तो कुछ रुपया होना चहिए।'

'तुम्हें मैं दूँगी रुपये, जितने भी रुपयों की जरूरत पड़ेगी, दूँगी। इस बारे में तुम निश्चिन्त रहो।'

और सचमुच शादी हो गयी। जीजी ने बतलाया कि पहले तो जमादार राजी ही नहीं होता था किसी दूसरी जाति के लड़के से अपनी लड़की की शादी के लिए पर जब उन्होंने (जीजी ने) उसके शादी खरचे का भार अपने ऊपर ले लिया, कई तरह से उसे समझाया-बुझाया तब वह मुश्किल से राजी हुआ।

इधर मेरे मन में आखिर तक तर्क-वितर्क उठते रहे और बार-बार मैं यह सोचता था कि यह सब क्या मूर्खता मैं करने जा रहा हूँ। भंगी की लड़की के साथ मेरी पटेगी कैसे? और मेरा अपना समाज भी न जाने किस हद तक विरोध करेगा? लड़की जन्म से ही जो गन्दा काम करने के लिये अभिशप्त है, उससे उसे कैसे छुटकारा दिया जा सकेगा। मेरी रोमाण्टिक कल्पना यह सोच-सोचकर कुण्ठित हो रही थी। मैं अपने लड़कपन में यह भी सोचता था कि लड़की को मैं चाहे कैसे ही बढ़िया कपड़े क्यों न पहनाऊँ, वह जिस तरह की सफाई का काम करती है उससे उसके सभी कपड़े दुर्गन्ध से वैसे ही सड़ जायेंगे। बड़ी विकट समस्या थी मेरी। पर जब मेरे भीतर का चिन्तक और समाज-सुधारक विचार करने बैठता तब मैं अपने वचन में और अधिक दृढ़ बने रहने का निश्चय कर लेता था।

अन्त में शादी का दिन आ ही गया। सभी प्रकार की रस्मों से गुजर चुकने के बाद जब लड़की (जिसका नाम विडम्बना से चमेली था) सुहाग की रात में मेरे पास प्रायः काँपती हुई-सी एकान्त में आयी, तब मेरी सारी कुण्ठा कपूर की तरह विलीन हो गयी। मुझे भारी प्रसन्नता इस बात की हुई कि चमेली पहले ही दिन से मुझसे बिना किसी कुण्ठा के मुक्तभाव से हिल-मिल गयी और अपने पत्नीत्व के अधिकार का [illegible] सहज प्रदर्शन करना आरम्भ कर दिया—अत्यन्त सहज भाव से। पहले ही दिन से उसने गृहस्थी का सारा भार सँभालना आरम्भ कर दिया। जब वह दूसरे दिन बिना मुझसे कुछ बताये ही खाना बनाने की तैयारी करने लगी, तब मेरा मन सिकुड़ने लगा। मेरे घर के संस्कार [illegible] का बना खाना खाने के विरुद्ध थे। पर चमेली बहुत [illegible] उसने इस काम के लिए सफाई के सभी नियमों का [illegible]

और कट्टरता से किया। मैं आरम्भ से अन्त तक उसकी छोटी-से-छोटी हरकत पर गौर करता रहा। पर कभी एक क्षण के लिए भी उसने शिकायत के लिए कोई मौका ही नहीं दिया। फल यह हुआ कि मैंने बड़े प्रेम से खाना खाया।

बुहारी देने, बिस्तर झाड़कर सफाई से बिछाने, पीना और खाना बनाने का पानी अलग से भरने आदि सारे कामों में उसने आशा से परे चतुराई और सफाई का परिचय दिया। वह अब सब समय विवाह के नये कपड़े पहने रहती थी और समय-समय पर उन्हें साबुन और सोडा से धोती भी रहती थी। सफाई के सम्बन्ध में उसके इस हद तक साव-धान रहने के पुरस्कार के रूप में मैंने उसे एक बढ़िया इत्र की शीशी प्रदान की और उसके उपयोग के सम्बन्ध में उसे आवश्यक हिदायत भी दे दीं। जब वह उस इत्र से तर होकर किसी काम से मेरे पास आती तब मेरे हर्ष का समुद्र मर्यादा तोड़कर सारी तटभूमि को अपनी लपेट में लेने के लिए उमड़-उमड़ उठता। जल्दी ही वह स्थिति आ गयी कि मैं उसे पाकर अपने को संसार में सब से सुखी मनुष्य समझने लगा। एक ही सप्ताह के बाद मैं यह अनुभव करने लगा कि चमेली को केवल गृहस्थी के कामों में फँसाकर घर के घेरे में बन्द रखना बहुत बड़ा अन्याय होगा। इसलिए मैंने एक दिन बड़े आग्रह के बाद उसे एक सिनेमा-शो में ले चलने के लिए राजी किया। इसके पहले केवल उसने एक या दो बार सिनेमा देखा था। छह आने के टिकट पर। उसने बताया कि उसने अपनी एक सखी के साथ देखा था। और जो कुछ भी देखा कण-मात्र भी वह नहीं समझ पायी थी। जो फिल्म मैं उसे दिखाने ले गया था उसके लिए काफी रोचक होगी, इसका मैंने फिल्म के विज्ञापन से ही अनुमान लगा लिया था। उस फिल्म में भाग लेनेवाला जोकर एक मशहूर ऐक्टर था। रोमांच बहुत सीधा-सादा और सब की समझ में आनेवाला था। विलेन का पार्ट भी काफी रोचक था। और जासूसी का जो चक्कर उसमें दिखाया गया वह फिल्म की रोचकता बढ़ानेवाला और सब की समझ में आने-वाला था। जो बात सहज में समझनेवाली नहीं लगती थी उसे मैं धीरे-से चमेली के कानों को समझा देता था। मैंने बालकनी का टिकट खरीदा

था, जहाँ के सफेदपोश दर्शकों के बीच चमेली बहुत सिमटी-सिकुड़ी बैठी रही। फिर भी इतना स्पष्ट था कि वह फिल्म को बहुत 'इन्ज्वाय' कर रही थी। बाहर निकलने पर वह इस तरह मुक्त भाव से मेरे साथ रिक्शा पर बैठी जैसे फिल्मों के भीतरवाले फाँसी के तख्ते से अप्रत्याशित रूप से मुक्ति पा गयी हो। रास्ते में फिल्म की कुछ बातों का स्पष्टीकरण उसने मुझसे करवाया। सारे 'रहस्यों' की गुत्थियाँ सुलझ जाने से उसकी प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। फिर वह अपने कमेण्ट्स व्यक्त करने लगी। बोली, 'हीरो बहुत ही सुलझा हुआ और दिलेर आदमी था। मेहरारू (उसका आशय स्पष्ट ही हीरोइन से था) बहुत ही चालाकी दिखा रही थी, पर थी बड़ी फूहड़ और बेवकूफ। जो मेहरारू अपने आदमी को झंझटों से बचाने के बजाय उसे और ज्यादा उलझनों में फँसा दे वह भी कोई औरत है!' इसी तरह कुछ और भी टिप्पणियाँ उसने कीं।

जीजी के उधार लिए हुए रुपये प्रायः खत्म होने पर आ गये थे। मैं बहुत चिन्तित होने लगा था। फिर भी मैंने चमेली को सफाई की नौकरी से छुड़ा लिया। मेरी उस समय की हालत में वह काम बड़े साहस और खतरे का था। फिर भी मैं महावीर जी से रोज सवेरे प्रार्थना करता रहा और उन्होंने जल्दी ही मेरे ऊपर कृपा की। तुम कुछ भी कहो, राकेश, हनुमान जी हैं बड़े जाग्रत देवता। दूसरे देवताओं के दरबार में बरसों सिर रगड़ते-रगड़ते माथा घिस जाता है, तब भी कोई फल देखने में नहीं आता। पर वाह रे महावीर! तेरी माया अपरम्पार है! शादी के एक ही महीने बाद मुझे तनिक से प्रयत्न से एक हरिजन पाठशाला में नौकरी मिल गयी। अध्यापक का काम मेरे मन के अनुकूल भी था और वेतन एक सौ पच्चीस रुपये। मेरी तत्कालीन आवश्यकता के लिए इतना पर्याप्त था। मैंने हनुमान जी को लड्डू चढ़ा-कर बड़े प्रेम से प्रसाद पाया और चमेली को भी खिलाया। स्थिति समझ-कर वह भी बहुत प्रसन्न हुई। तब से मैं बराबर हर संकट की स्थिति में महावीरजी को याद किया करता हूँ और उन्होंने मुझे कभी धोखा नहीं दिया।"

[illegible]

"तुम बड़े सच्चे भक्त हो भाई ! केवल हनुमानजी की ही विशेषता इसमें नहीं है, भक्त की भावना पर भी बहुत-कुछ निर्भर करता है।" राकेश ने कहा।

"पर मुझ-जैसे भक्तों को भक्ति करने ही कौन देता है ?"

"क्यों, इसमें रुकावट डालनेवाला कौन है ?" राकेश ने पूछा।

"अब इतने भोले मत बनो, प्यारे ! तुम्हें अच्छी तरह पता है कि हम हरिजनों को किसी मन्दिर में प्रवेश नहीं करने दिया जाता। भगवान् के दरवाजे हमारे लिए बन्द हैं। वहां भी काला-बाजारी चलती है। मेरे एक साथी ने एक बार हनुमानजी के एक मन्दिर के दरबान को दस-बीस रुपये घूस में दिये तब बड़ी कठिनाई से वह देवता के दर्शन पा सका। वह तो कहो कि दरबान इतनी आसानी से मान गया। वरना अधिकतर दरबान इस कदर 'कट्टर' होते हैं कि रुपया लेकर भी किसी हरिजन भक्त को भीतर प्रवेश करने देना तो दूर, मरने-मारने पर उतारू हो जाते हैं। इस तरह की परेशानियों से तंग आकर मैंने एक हरिजन मिस्त्री को हनुमान की एक मूर्ति गढने के लिए प्रेरित किया। वह भी महावीर-जी का सच्चा भक्त था। उसने बड़े प्रेम से एक सुन्दर मूर्ति गढ़ी, जो मुझे भा गयी। मैंने उसे घर ले जाकर अपने सिरहाने के पीछे एक स्टूल पर रखकर उसकी स्थापना की और 'हनुमानचालीसा' के पाठ की सहायता से मूर्ति की प्रतिष्ठा की। मूर्ति को गाढ़े सिन्दूर से रँगकर सहज ही प्राप्त सस्ते गहनों से सजाकर मैंने उसकी पूजा करनी शुरू की।" अन्तिम दो वाक्य कहते हुए भूतनाथ का गला भर आया और उसकी आँखों से दो बूंद आँसू टपक पड़े। इसके बाद वह उठने ही को था कि राकेश ने उसके हाथों को नीचे को खींचना आरम्भ किया और यह अनुरोध किया कि वह अपना किस्सा पूरा करे।

"किस्से में अब बाकी क्या रखा है ? वह पूरा हो चुका है। वैसे यदि ईमानदारी से सारा किस्सा सुनाना चाहूँ तो वह अनन्तकाल तक भी शायद ही पूरा हो। फिर भी सुनो—

शादी होने के ठीक दस महीने बाद चमेली ने एक बच्चे को जन्म दिया। बच्चा बहुत प्यारा था—गोरा-चिट्टा रंग, स्वस्थ और सुन्दर

शरीर। उसकी किलकारियाँ मुझे कभी नन्द बाबा के आँगन में और कभी दशरथ के अजिर में पहुँचा देती थीं, जहाँ स्वयं भगवान् किलकारते थे। मनुष्य के भीतर निश्चित रूप से भगवान् का वास है, इस बात की शिक्षा मुझे सब से पहले उसी बच्चे ने दी।

दूसरे ही वर्ष फिर दूसरा बच्चा अवतरित हुआ और तीसरे वर्ष तीसरा। मैंने 'दो या तीन, बस !' वाली सीख पढ़ और सुन रखी थी। 'बस' तो ठीक था, पर इस 'बस' के पहले ही जो स्थिति पैदा हो गयी थी उसके निर्वाह का कोई उपाय मुझे नहीं सूझता था।

जीजी ने मेरी स्थिति देखी और कहा, 'बच्चा, तुम अब स्कूल की नौकरी पर निर्भर करके नहीं जी सकोगे। इसलिए तुम भी वही काम सीखो, जिसमें तुम्हारे जीजा जुटे हुए हैं—यानी जूते सिलना सीखो और बढ़िया फैशन के जूते सिलकर हजरतगंज में एक छोटी सी दूकान खोल लो, तभी अपनी गृहस्थी का निर्वाह अन्त तक बड़े ठाठ से कर सकोगे, वरना दर-दर की ठोकरें खाते फिरोगे और कहीं चैन नहीं पाओगे।' और मैंने जल्दी ही वही काम अपना लिया। एक दूकान भी खोली, जिससे मैं आवश्यकता से अधिक रुपया कमाने लगा।

मेरे यही चाचा, जो आज ही आकर तुम्हारे मेहमान बने हैं, मुझे आरम्भ ही से बहुत चाहते थे। वह समय-समय पर चुपके-चुपके मेरे पास लखनऊ आकर मेरी सहायता के लिए काफी रुपया दे जाया करते थे। पर मैं बार-बार आत्म-निर्भर ही बना रहा। महावीरजी की कृपा से।

पर चमेली के साथ जीवन बिताते हुए कुछ ही समय बाद उस जीवन की एकरसता से मेरा जी ऊबने लगा। फल यह हुआ कि मैं धीरे-धीरे उसके स्नेह और सेवा-भाव को भूलने लगा और भाग निकलने की सोचने लगा। पर मैंने ऐसा किया नहीं। एक धुंधली, अस्पष्ट और रहस्य-भरी महत्त्वाकांक्षा मेरे भीतर बचपन से लेकर आज तक बराबर बनी रही है। मैं कई बार उस महत्त्वाकांक्षा को एकदम स्पष्ट रूप में अपने मन की आँखों में चित्र की तरह लाने का प्रयत्न करता रहा हूँ, पर कभी वह चित्र मेरे आगे स्पष्ट नहीं हो पाया। शायद ठगनी माया इसी को कहते हैं। इस अस्पष्ट महत्त्वाकांक्षा के बीज मेरे मन में अक्सर कुलबुलाते

रहे हैं। और मुझे कोई-न-कोई अनोखा कदम उठाने के लिए प्रेरित करते रहें हैं। जिस मकान में मैं रहता था उसके मालिक ने मुझे परेशान करना शुरू कर दिया था। वह किसी-न किसी उपाय से मुझे अपने मकान से निकालने पर तुला हुआ था। शायद उसे मेरे हरिजनत्व का पता किसी जासूस से लग गया था। कभी पानी बन्द कर देता, कभी किराया बढ़ाकर दुगना माँगने लगता और अक्सर मुझे अदालती चक्करों में फँसाये रहता। अदालती चक्कर क्या चीज है, जिसे इसका अनुभव न हो चुका हो उसे समझाना असम्भव है। प्रतिदिन अदालत के चक्कर काटते रहो, प्रतिदिन वकील से बढ़ती हुई फीस के बारे में बहस करते रहो और 'केस' की पेचीदगियाँ उसे निरन्तर समझाते रहने का प्रयत्न करते रहने पर भी समझा न पाने के कारण कुढ़ते चले जाओ। अदालत में अन्ततः अपने न्यायोचित पक्ष की विजय होगी ही, इसकी तनिक भी गारण्टी नहीं, पर अदालत की पेशी की तारीख को जज साहब मिलेंगे ही, इसका भी कोई भरोसा नहीं। फिर भी वहाँ का चक्कर हर हालत में काटना ही होगा, जज साहब आ जायँ, इस प्रतीक्षा में रहो, अदालत के बाहर खुले बरामदे के टूटे बेंच में बैठे रहो, और गिरह-कटों, बदमाशों, गुण्डों और जालसाजों के बीच बैठकर गरमियों की धूप में भी तीन-तीन, चार-चार घण्टे सिर सुखाते रहने को आप बाध्य हैं। शाम तक भी अक्सर जज साहब के दर्शन नहीं होते। तब फिर जज का पेशकार या अहलमद या और कोई (उन लोगों की विचित्र उपाधियों के नाम याद रखना भी एक जहमत हैं) आपको पेशी की एक नयी तारीख देता है, क्योंकि जज साहब के बच्चे को जुकाम हो गया था। वह नहीं आ सकते।

यह तो हुई केवल एक चक्कर की बात। पर मेरा मकानवाला बार-बार इसी तरह के अनेक चक्करों में मुझे फंसाये रहता था। मुक़दमा किरायेदार को टॉर्चर करते रहने का सब से अचूक उपाय था। और मैं इसी परेशानी से यह सोचता था कि कैसे उससे पिण्ड छूटे। इसलिए दिन-भर किराये के खाली मकानों की तलाश में घण्टों शहर की सड़कों के चक्कर काटा करता। पर महीनों कोशिश करते रहने पर भी एक भी

मकान खाली न मिला (यानी खाली होने पर भी मुझे न मिल सका।) अन्त में एक दिन सहसा हम इलाहाबाद चले आये। यहाँ संयोग से ही यह मकान मैं ढूँढ़ पाया। यह खाली तो था ही, पर इस बात के लिए बदनाम भी था कि यह भुतहा है। इसलिए कोई किरायेदार वहाँ जाने को राजी नहीं होता था। संयोग से ही मैंने इसे ढूँढ़ लिया और उसकी तारीफ भी मुँह से सुनी। मैं महज कुतूहल के वश एक रात चुपके से आकर ऊपरवाली अँधेरी कोठरी में डेरा जमाकर रहने लगा। इस कमरे को चोर कोठरी भी कहा जाता था और मैंने मकान के भुतहा होने की अफवाह को सच्चा और पक्का सिद्ध करने के उद्देश्य से विचित्र-विचित्र भुतहा काण्ड करने शुरू किये। जो भी आफत का मारा यहाँ आता उसे अपने उन अदभुत भुतहा काण्डों से इस कदर भयभीत करता कि वह एक दिन से अधिक वहाँ टिक नहीं पाता था।

चमेली को उसके बच्चों के साथ मैंने एक हरिजन कॉलोनी में, कुछ सहानुभूतिशील पड़ोसियों के बीच बसा दिया। बीच-बीच में उसे खर्चे के लिए काफी से ज्यादा रुपये चुपचाप दे आता। उसके बाप को किसी तरह समझा-बुझाकर इस बात के लिए राजी कर दिया कि कुछ दिनों तक मैं एक जरूरी काम से गुप्तवास करूँगा। इसलिए वह या घर का कोई और आदमी चमेली के साथ रहकर घर की देखभाल करता रहे। मैं अभी कुछ ही दिन पहले चमेली के पास रुपया देने गया था। वह बच्चों के साथ मजे में है। मैंने उसे आश्वासन दिया है कि मैं अब जल्दी ही लौटकर उन्हीं लोगों के साथ रहने को आ जाऊँगा।

अन्त में सारे चक्करों के बाद इस मकान के किरायेदार बनकर आये तुम। तुम लोगों की परेशानी देखकर मुझसे रहा न गया और मैंने अपने-आपको प्रकट कर दिया।

हाँ, एक बात मैंने तुम्हें अभी तक बतायी नहीं। इस बीच में एक रात दो बजे के करीब मेरे यही चाचा और उनके साथियों ने एक पूरी ट्रक लाकर इसी मकान के बाहर की गली में खड़ी कर दी। उनके पास पाँच-सात पैकिंग की लकड़ी के बक्से थे। उन्हें वह लोग बिना किसी शोर के मेरे पास ले आये। चाचा ने मेरे कान में चुपचाप बता दिया

कि वे सब डाकू हैं और कलकत्ते के किसी बैंक में धावा बोलकर हजारों की नकदी से भरे बक्से छुपाने के लिए यहाँ ले आये हैं। मैं डर गया। मामला बहुत संगीन लगा। पर महावीरजी की कृपा से मामला किसी तरह टल गया और पुलिसवाले जैसे उक्त डकैती की घटना को भूल ही गये। जो भी हो, मुझे कुछ महीने बाद ऐसा लगा जैसे मैं कम-से- कम पचास हजार रुपयों का मालिक बना जा रहा हूँ। बक्से तहखाने में छिपाये गये थे। और इस भुतहा मकान में किसी के आने की कोई सम्भावना नहीं थी। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया उस डकैती की चर्चा न किसी अखबार में छपती थी और न पुलिस के किसी दफ्तर में। मेरा भी एक दल है, जो जासूसी करता है और अपराध सम्बन्धी (विशेषकर डकैती से सम्बन्धित) हर बात की खबर रखता है।

मैं सोचता रहता कि तयखाने में बन्द इतना रुपया कहाँ रखूँ। कभी मन होता कि पुलिस में स्वयं ही खबर देकर अपने जी का भार हलका करूँ—उस पाप के बोझ से मेरा मन प्रतिक्षण छलनी हुआ जा रहा था। मनों—बल्कि टनों वजन के भार से दबा हुआ मेरा मन प्रतिपल एक मारक घुटन का अनुभव करता रहता था और एक पल के लिए भी मैं चैन नहीं पाता था। इसी 'मरता क्या न करता' की स्थिति में मुझ पर सहसा एक झख सवार हुई और मैंने एक बक्स तोड़कर खोला। उसमें कई हजार रुपये ठुँसे हुए थे। मैंने एक हरिजन कॉलोनी को वह सब रुपये गुप्त रूप से दान कर दिये। सोचा, चलो कुछ रुपयों का सदुपयोग तो हुआ।

अन्त में एक दिन चाचा के साथ वे ही आदमी एक ट्रक में फिर आ पहुँचे। उन्होंने नकदी के भरे सारे बक्स तहखाने से उठा लिये और चाचा ने नोटों की पाँच-सात बड़ी-बड़ी गड्डियाँ मुझे उन्हीं बक्सों में से निकालकर दे दी और कहा : इन्हें सिर्फ उन हालत में निकालकर खोलना जब तुम्हारे पास और कोई चारा न रह जाय और कोई मारक संकट न आ जाय। इससे पहले नहीं।

मैंने चाचा की दी हुई उन गड्डियों को एक सुरक्षित स्थान में छिपाकर रख दिया और कभी छुआ नहीं। पहली बार तब छुआ जब तुम दोनों

की बातचीत से मुझे पता चला कि तुम लोग निःस्व हो और अपने प्रतिदिन के भोजन के प्रबन्ध के लिए भी एक कौड़ी तुम्हारे पास नहीं है। मैंने एक गड्डी निकालकर नन्दा को दी और एक तुम्हें। अब भी दो-तीन गड्डियाँ एक-एक हजार की बची हुई हैं।

अब मेरे आगे एक ज्वलन्त प्रश्न यह है कि मेरा भविष्य क्या होगा? जीवन के इतने दिन तो काल ने किसी तरह काट ही दिये। पर आगे? अब मुझे आगे दो ही रास्ते दिखते हैं—या तो मैं ग्वालियर में जाकर आत्म-समर्पण कर दूँ, जहाँ चम्बल घाटी के बड़े-बड़े विद्रोही नेता (जिन्हें लोग 'डाकू' कहते हैं) आत्म-समर्पण कर रहे हैं या कर चुके हैं। पर इससे मेरे अन्तर की वह जीवन-व्यापी मार्मिक पीड़ा कभी दूर न होगी। बल्कि बढ़ती ही रहेगी, जो व्यापक जातीय अपमान के कारण मेरे भीतर-ही-भीतर भूसी की आग की तरह सुलगती रहती है। नित्य सोचते रहने पर भी मैं इस सामूहिक पीड़ा के उपचार के लिए कुछ भी न कर पाया, इस बात की ग्लानि मरने के बाद भी मेरी आत्मा में बनी रहेगी। और फिर चमेली और उसके बच्चों का क्या होगा? एक हरिजन-समाज में पैदा होने के यह कैसे भयंकर दण्ड मुझे भुगतने पड़ रहे हैं! मेरा तनिक भी हाथ विधाता की इस योजना में न होने पर भी मैं जघन्य अपराधियों की तरह एक-से-एक विचित्र परिस्थिति में विवश भटकता जा रहा हूँ। डकैती के रुपयों पर निर्भर करके जीना पड़ रहा है। यह कैसी मारक विडम्बना है, यह कोई नहीं समझेगा। लोग कहेंगे—इस जीने से मर जाना अच्छा, पर मैं कहता हूँ कि मैं क्यों मरूँ! और फिर मैं यदि डूबकर या जहर खाकर मर भी जाऊँ तब भी मेरे लाखों-करोड़ों भाइयों का क्या उद्धार होगा इससे? इसलिए मैं मरना नहीं चाहता। इस अन्याय के विरुद्ध आखिरी दम तक लड़ता और जूझता जाऊँगा। यह ठीक है कि मेरा भविष्य अगाध अन्धकारमय महाभयावह है, इस अन्धकार का और भय का कहीं न आदि ही मुझे दिखता है, न अन्त! फिर भी मैं निराश नहीं हूँ और न होना चाहता हूँ।" भूतनाथ ने व्याकुलता की इस चरम सीमा में पहुँचकर दोनों हाथों से अपनी आँखों पर परदा डाल दिया।

राकेश भूतनाथ के जीवन के उस 'रोचक अध्याय' को सुनकर अत्यन्त उत्साहित और हर्ष-मग्न हो रहा था। अन्त में भूतनाथ के अन्तर का आर्तनाद उसे सुनाई दिया तो भी उसके उत्साह में तनिक भी कमी नहीं आयी, बल्कि उसमें वृद्धि ही हुई। पर नन्दा स्पष्ट ही भाव-विह्वल हो उठी थी। फर्श पर एक छोटी-सी थैली पड़ी हुई थी। राकेश ने न जाने किस अनमनी स्थिति में उसे उठाकर अँगीठी में डाल दिया। थैली जल उठी और उससे धुंए की एक हल्की-सी लकीर उठी, तो नन्दा की आँखों पर बुरी तरह आक्रमण कर रही उसके मन के भीतर भूतनाथ का किस्सा सुनकर जो आँसू उमड़ रहे थे, इसे धुंए के बहाने नन्दा ने खुलकर बाहर निकालना शुरू कर दिया और बार-बार अपनी साड़ी से आँखें पोंछती रही।

"क्या हुआ नन्दा ?" राकेश शंकित होकर पूछा।

"कुछ नहीं, तुमने अँगीठी में क्या डाल दिया है ? उसी का धुंआ मुझे परेशान कर रहा है।"

जब भूतनाथ उठकर अपने कमरे में चला गया तब राकेश ने नन्दा के कानों में कहा: "देखा कैसा विकट भूत है यह ? हम लोग केवल इसके चमरपने से ही आतंकित हो रहे थे, यह तो पूरा भंगी निकला। अब बताओ इससे कैसे छुटकारा मिले ? इससे पूरी मुक्ति मिले बिना तो अब मैं एक दिन भी जी नहीं पाऊंगा। और मैंने मुक्ति का उपाय भी सोच लिया है।"

"क्या सोचा तुमने ?" घबरायी हुई आवाज में नन्दा ने पूछा।

"वह लम्बी योजना है, फिर बताऊँगा तुम्हें।"

और फिर दोनों अपने-अपने पलँग पर लेट गये।

"आखिर वह लम्बी योजना क्या है, तनिक मैं भी सुनूं।" पलंग पर बैठे-बैठे नन्दा बोली: "देखना उसके प्रति कृतघ्नता का कोई व्यवहार न करना। उन्होंने हमें आश्रय दिया है। वह चाहते तो अपने 'विचित्र भुतहा काण्डों' से हमें भयभीत करके पहले ही दिन से हमें निकाल-बाहर कर सकते थे। इसके अलावा उन्होंने बिना चाहे ही वर्तमान विकट संकट की स्थिति में इस परदेश में हमारी आर्थिक सहायता

की है। इन बातों को भूल जाओगे तो तुम्हें संसार में कहीं कोई ठौर न मिल पायेगा। 'तर्क नीच जो भीए साधु की सो पामर तेहि मीच मरै' मैं कुछ जानती भी नहीं। केवल तुम्हें एक चेतावनी दिये दे रही हूँ, वाकी तुम्हारी जैसी इच्छा।"

"तुम मूर्ख हो, तुम कुछ नहीं जानती, जैसा कि तुमने स्वयं स्वीकार किया है। इसलिए चुपचाप सो जाओ। मुझे भी बड़ी नींद आ रही है। भूत के जीवन का विकट किस्सा सुनकर मन वहुत थक गया है।"

इसके वाद दोनों गहरी नींद में सो गये।



दूसरे दिन दोपहर को भूतनाथ अपने चाचा, को स्टेशन तक पहुँचाने चला गया। रात में देर से लौटा। राकेश भी दिन-भर इधर-उधर चक्कर काटता रहा। जव वह रात में देर से घर पहुँचा तव उसे भूतनाथ अपने कमरे में नहीं दिखा। नन्दा से पूछने पर उसने वताया कि भूतनाथ लगभग एक घण्टा पहले वाहर से लौट कर आ गया था, अव फिर कहाँ चला गया, पता नहीं।

राकेश वाजार से कचौड़ियाँ लेता आया था। खा-पीकर जव वह लेटा तो काफी देर तक उसे नींद ही नहीं आयी। जव आँखें कुछ लगीं तव सहसा कहीं से खटर-खटर की आवाज सुनकर वह उचक कर उठा और लेटे-ही-लेटे कान लगाकर सुनने लगा। आवाज क्षण-क्षण वदलती हुई, विचित्र-सी लग रही थी। कभी कनस्तर के वजने का-सा शब्द सुनाई देता

था, कभी तवले पर पड़नेवाले थाप का और कभी बच्चों के खेलने की पपहरी का। राकेश बेचैन होकर छटपटा रहा था और उठकर नीचे जाना चाहता था। पर एक तो ठण्ड बहुत तेज थी और दूसरे भयावनी आवाजें उसे डरा रही थीं। इसलिए वह लेटा ही रहा। अपना मोटा और लम्बा तीन सेलवाला टॉर्च वह लेटे ही लेटे हाथ में लिए रहा। एक बार जब बड़े जोर का 'धप्प' शब्द हुआ तब राकेश से रहा न गया और वह पलंग पर से नीचे कूद पड़ा। बाहर बरामदे से ही वह नीचे को झाँकने लगा। नीचे एकदम अँधेरा था और मौत का-सा सन्नाटा छाया हुआ था। राकेश थर-थर काँप रहा था। ठण्ड भी कड़ाके की थी और बेहद ठिठुरन का अनुभव हो रहा था। एक बार उसने अपना टॉर्च बन्दूक की तरह नीचे को किया, पर कोई नहीं दिखा। राकेश को लगा कि आवाज नीचे आँगन से नहीं, बल्कि अलग-थलग के किसी मकान से आ रही है। राकेश को अकेले नीचे उतरने का साहस नहीं हो रहा था। एक बार उसने सोचा कि नन्दा को जगाये। फिर सोचा वह सारी परेशानियों को भूलकर बड़ी मुश्किल से नींद की गोद का सुख अनुभव कर रही है, इसलिए ऐसे समय उसे जगाना जघन्य नीचता होगी। सोचकर वह काँपते हुए पाँवों से चुपचाप खड़ा रहा। हृदय भी इस तरह धप्प-धप्प की आवाज कर रहा था जैसे वह रबड़ की गेंद हो और कोई नट-खट बच्चा उसे पकड़-पकड़कर बार-बार दीवार पर पटकता चला जा रहा हो। काँपना इस हद तक बढ़ गया था कि उसे जैसे वह गिर ही जायगा। उससे रहा न गया और उसने सीधा कमरे के भीतर जाकर नन्दा को हिलाकर जगाया।

"क्या बात है?" नन्दा ने आँखें मलते हुए पूछा। राकेश ने कमरे की बत्ती जला दी थी। "तुम कब से जागे हो?" नन्दा ने पूछा, "और मुझे क्यों जगा रहे हो?'

"अरे नन्दा, तनिक उठो तो और सुनो। नीचे कोई खटपट कर रहा है। मैं बरामदे में गया देखने, पर कोई दिखा नहीं। कभी तवले पर थाप पड़ने की आवाज सुनाई पड़ती है और कभी कनस्तर पीटने की।"

"और तुम इतने ही से डर गये? बड़े वैसे हो। चलो, जरा सुनूं

में भी।"

"अरे, तुम कहाँ चलोगी ठण्ड में", राकेश ने बनते हुए कहा। "मैं ही नीचे जाकर देखता हूँ।"

"नीचे जाने की जरूरत ही क्या है? साफ है कि 'उनका मूड आज किसी कारण से बदल गया है। उनके सिवा दूसरा कौन हो सकता है?"

"भूतनाथ क्या रात में लौट आया?" राकेश ने पूछा।

"वह आ गये थे, करीब बारह बजे होंगे। तब तुम सो गये थे। दरवाजा मैंने ही खोला था। नींद नहीं आ रही होगी, इसलिए खटर-पटर कर रहे होंगे।"

"पर अपने कमरे में तो वह नहीं है। कहीं कोई चोर न हो।"

"कैसी बात करते हो? उनके रहते कोई चोर इस मकान में कैसे आ सकता है?"

"तुम ठीक कहती हो। डाकू के घर चोर? वैसे जब किसी चोर के घर मोर आ सकता है, तब डाकू के घर में चोर का आना भी असम्भव नहीं है। पर वह है कहाँ? अपने कमरे में तो नहीं है।"

सहसा कहीं से एक अत्यन्त सुरीला और मार्मिक रुदन-भरा करुण राग—जैसे धरती के भीतर से निरन्तर ऊपर उठता हुआ सुनाई दिया। आवाज बहुत सधी थी, गीत के शब्द बहुत स्पष्ट सुनाई पड़ रहे थे। दोनों ध्यानमग्न होकर, सभी इन्द्रियों की पूरी शक्ति कानों में केन्द्रित करते हुए सुनने लगे :

सैयाँ मोर गवनवाँ लिहले जाला
बदरी में।
पैंया तोर लागूं मोरे भैया कहरवा,
तनी एक डोलिया रुकतो एहि डगरी में।
सैयाँ मोर......
गुन नहि सिखलीं करम नहि कहलीं होऽऽ
दाग लागल गुइयाँ मोरी कोरी चुनरी में।
सैयाँ मोर......

नन्दा के अन्दर से एक अजीब-सी तीखी वेदना रह-रह टीस मारती हुई उमड़ पड़ती थी। उसे लग रहा था जैसे उसके अन्तर के अनादि और अगाध अन्धकार से एक दिव्य प्रकाश की करुण रेखा विश्व के अनन्त प्रकाश में विलीन होने के लिए व्याकुल होकर कराह रही हो। उसे इस बात का अत्यन्त दुःख हो रहा था कि उसे केवल दो ही कान मिले हैं —सौ कान लेकर क्यों पैदा न हो सकी। अमृत-निर्झर की वह अविराम धारा केवल दो ही कानों के भीतर कैसे समा पायेगी ? हाय भगवान्! वह कैसे उस धारा में आकण्ठ मग्न हो पायेगी? और वह अलौकिक संगीत-धारा थमती ही नहीं थी। भगवान्! इस राग-निर्झर का स्वर बन्द होने के पहले ही मेरे प्राण भी उसमें समा जायँ और अनन्त काल तक उस मग्नता से वह न उबरने पायें।"

"बाहर बहुत ठण्ड है, कमरे के भीतर चलो नन्दा, फिर बीमार पड़ जाओगी!" राकेश प्रायः उकताये हुए स्वर में बोला। स्पष्ट ही उसके जड़ प्राणों में अपूर्व सुर-लहरी का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ रहा था।

"तुम पत्थर से भी जड़ हो! कोई कठिन पाषाण भी यह राग सुनकर पिघले बिना नहीं रह सकता। और तुम हो कि ठण्ड की चिन्ता से घुले जा रहे हो। तुम कवि नहीं सचमुच के 'वो' हो, जिसे कोई भी मदारी नचाकर नरक-कुण्ड में ढकेल सकता है। नरक का कोड़ा नरक ही में पड़े रहना पसन्द करता है। 'ऊधो, मनमाने की बात! दाख छुहारा छोड़ि के विष-कीड़ा विष खात!' तुम जाओ भीतर, मैं अभी नहीं जाऊँगी। संगीत-धारा शायद नन्दा के आक्रोश की बात सुनकर सहसा थम गयी थी। राकेश के भीतर चले जाने पर फिर उसी स्वर्गीय संगीत की गूंज नन्दा के अन्तःप्राणों को झकझोरने लगी। नन्दा ने स्वप्न में नहीं, यथार्थ में सुना कि वह गूंज सीढ़ी-दर-सीढ़ी ऊपर को उठती चली आ रही थी। और उसके साथ ही तबले पर पड़नेवाली थाप की तरह दो नंगे और गतिशील पाँवों की छपाक्-छपाक् छलक्-छलक् करती आवाज ऊपर को धीरे-धीरे उठती आ रही थी। उसी थाप की ताल उसका पुलकित हृदय धक्-धक् धड़कता जाता था। अज्ञात के भय ने उसे

आ घेरा और वह भीतर चली गयी।

सवेरे तड़के ही कुछ-कुछ उजाला होने तक दोनों गहरी नींद में खोये रहे। सहसा बाहर का दरवाजा किसी ऐसी हड़बड़ाहट से बिना क्षण के भी रुके खटखटाना शुरू किया जैसे बड़े जोरों की आग लगी हो। दोनों पलंग पर से नीचे कूद पड़े।

"नन्दा तनिक देखो तो कौन है!"

नन्दा जल्दी में शाल को उल्टा-सीधा लपेट नीचे गयी और दरवाजा खोलते ही हक्की-बक्की-सी खड़ी रह गयी। मारे घबराट के वह न तो लौट ही सकी न आगे बढ़कर कुछ बोल ही सकी। पुलिस के चार सिपाही बाहर खड़े थे।

जो सिपाही दरवाजे से चिपका-सा खड़ा था उसने तनिक सभ्यता से पूछा: "क्या श्रीमान् राकेश इसी मकान में रहते हैं?"

'जी नहीं' कहना चाहते हुए नन्दा न जाने कैसे "जी हाँ" बोल गयी। फिर तनिक ढीठ होकर उसने पूछा, "कहिए कैसे, किस काम से आप आये हैं इतने सवेरे?"

"ऐसे ही। उन्हीं से कुछ जरूरी काम था, कृपा करके उन्हें बुला दीजिए।"

नन्दा लड़खड़ाते पाँवों से ऊपर लौटने को पीछे मुड़ी। जीने की तीसरी सीढ़ी पर नीचे जमीन तक लटके हुए शाल पर उसके दायें पाँव की उँगलियाँ उलझ गयीं और वह गिरते-गिरते रह गयी। उसने तत्काल दीवार का सहारा पकड़ लिया था, इसलिए बच गयी। फिर भी उसने शाल को सँभाला नहीं। उसे उसी तरह जबरदस्ती घसीटती हुई वह किसी तरह ऊपर कमरे में पहुँची। वह बुरी तरह हाँफ रही थी। राकेश ने पूछा: "बात क्या है नन्दा, तुम इस कदर हाँफ क्यों रही हो?"

"क-क-क्या बताऊँ! चार कॉन्स्टेबल बाहर दरवाजे पर खड़े हैं और तुम्हें पूछ रहे हैं।"

"मैं जाता हूँ, तुम बिलकुल मत घबराओ। मैंने ही उन्हें बुलाया है— इस भूत को घर से निकलवाने के लिए।" कहकर वह नीचे उतर गया।

नन्दा अर्द्ध-अचेतावस्था में पलंग पर जा गिरी।

नीचे उसी 'सभ्य' पगड़ीवाले ने राकेश से पूछा : "कहाँ हैं वह महाशय ?"

राकेश उन्हें सीधे भूतनाथ के कमरे में ले गया। पर वहाँ कोई नहीं था। नीचे तहखाने में देखा गया। वहाँ भी कोई नहीं था।

"वह पगला बाहर टहलने निकल गया होगा, अभी आता ही होगा।"

"इस सर्दी में टहलना कैसा ?"

"उस पागल की यही आदत है। आइए, आप लोग तनिक आराम से बैठ जायँ।" कहकर रसोई के कमरे के बाहर पड़ी हुई एक टूटी-सी मचिया खींची और उन पर चारों को बिठाया।

"आप लोग जरा बैठिए, मैं अभी चाय बनाता हूँ।" कहकर राकेश केतली में पानी भरकर अँगीठी सुलगाने लगा। पर अँगीठी थी कि सुलगती ही न थी। राकेश ने नीचे से ही नन्दा को बुलाया और उससे कहा कि हमारे इन मेहमानों को चाय बनाकर पिलाना है।

नन्दा उसी हालत में अँगीठी सुलगा पानी उबालकर चाय बनाने लगी। किसी तरह चाय बनी। चाय पी चुकने के एक घण्टा बाद तक भी जब भूतनाथ नहीं आया तब एक कॉन्स्टेबल प्रायः अट्टहास करता हुआ बोला : "मुजरिम फरार हो गया है।"

दूसरे सिपाही ने, जो तीनों का मुखिया लगता था—अर्थात् तीनों से ओहदे में भी बडा लगता था, कहा : "देखिय साहब, माफ कीजिए, आपने तो कोई सूचना नहीं दी मुजरिम को हमारे आने की ?"

"जी नहीं, मैं क्यों देता उसे सूचना ! उसे अपने-आप भी कुछ अहसास हुआ हो तो मैं नहीं जानता। पर मुझे पक्का यकीन है कि वह आता ही होगा। तनिक और ठहरिये, या फिर किसी दूसरे समय आइए।"

"ठीक है, अभी तो हम चलते हैं। फिर देखी जायगी।" कहकर मुखिया सब को अपने साथ लेकर लौट गया।

पर 'मुजरिम' फिर उस घर में नहीं लौटा। उस दिन भी नहीं, और उसके बाद भी नहीं। राकेश को लाख सिर पटकने पर भी कोई पता नहीं लग पाया उस पागल भूत का। वह सोचता रहा कि वर्तमान को तो वह सफाई से बचा गया, पर न जाने उस भूत का भविष्य क्या होगा !

प्रायः एक महीना वाद एक पुलिस इन्स्पेक्टर के साथ उन्हीं कॉन्स्टेबलों ने राकेश के दरवाजे पर दस्तक दी।

पुलिस इन्स्पेक्टर ने कुछ देर तक राकेश को इधर-उधर की वातों में वहकाया, फिर वड़े सलीके से, लाल-लाल-सी आँखों से उसे देखते हुए कहा : "देखिए साहव, आप स्वयं मुजरिम के सम्वन्ध में थाने में जाकर सूचना दे गये थे और स्वयं ही आपने उसे हमारे आने की सूचना देकर फरार कर दिया। हमें तो लगता है कि आप निश्चय ही उसके साझेदार रहे होंगे। लूट के हिस्सा-वाँट में आप दोनों के वीच झगड़ा हो गया होगा। अब उसे न पाकर हमें मजबूरन आप को ही गिरफ्तार करना होगा।" राकेश वहुत छटपटाता रहा, पर इन्स्पेक्टर ने सोचा कि इस दूसरे मुजरिम को भी वह छोड़ देगा तो एक मजेदार केस हाथ से चला जायगा। लिहाजा वह राकेश के हाथों में हथकड़ी डालकर अपने साथ ले गया। नन्दा सीधे स्टेशन जाकर मथुरा जानेवाली रेलगाड़ी में वैठ गयी। भूतनाथ का दिया हुआ कुछ रुपया उसके पास अभी तक बचा हुआ था। भूत का मकान भूत को सौंपते हुए, वह अपना होश-हवास भी पूरी तरह न सँभालकर जमुना में डूव मरने के इरादे से चल पड़ी।

गाड़ी में रास्ते-भर मन-ही-मन गाती रही—

सैयाँ मोर गवनवाँ लिहले जाला वदरी में !…